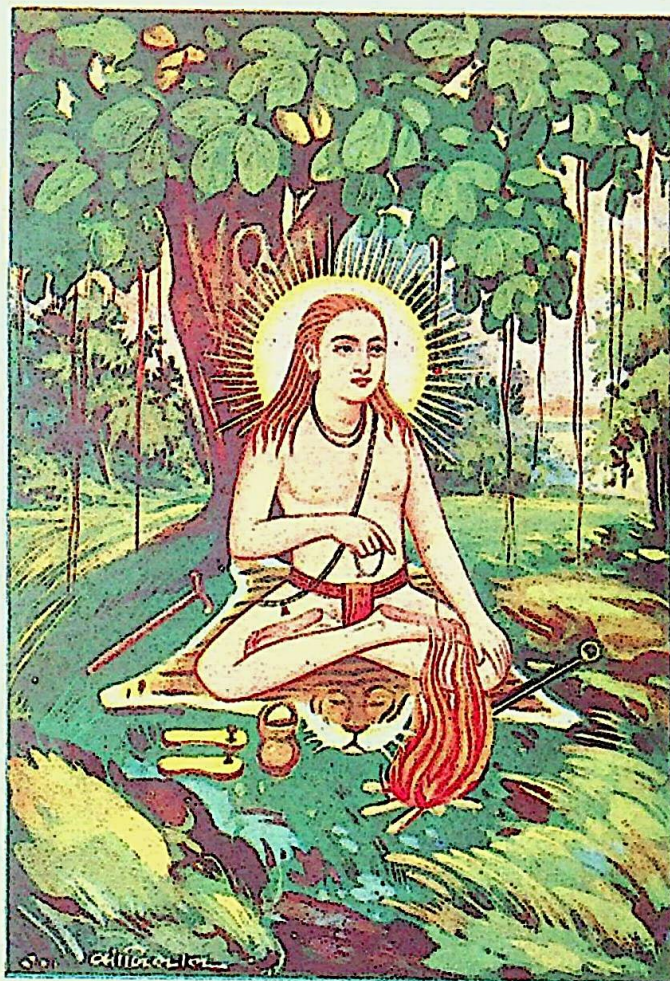




पुरुषार्थ सन्देश

भगवान् श्रीचन्द्राचार्य अभिनन्दनाह

अङ्क १

मार्च

१९६२

वर्ष १

फाल्गुन

१९१८

परमानन्द संदेश

वर्ष २
फाल्गुन

अंक ५
मार्च

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक

२०१८

१९६२

संस्थापक

श्री १०८ सद्गुरु बाबा
शारदाराममुनिजी महाराज

सम्मान्य संरक्षक
श्रीमहाप्रण्डलेश्वर
स्वामी गंगेश्वरानन्दजी
महाराज

संचालक

श्री अजित मेहता
बी० ई० (सिविल)

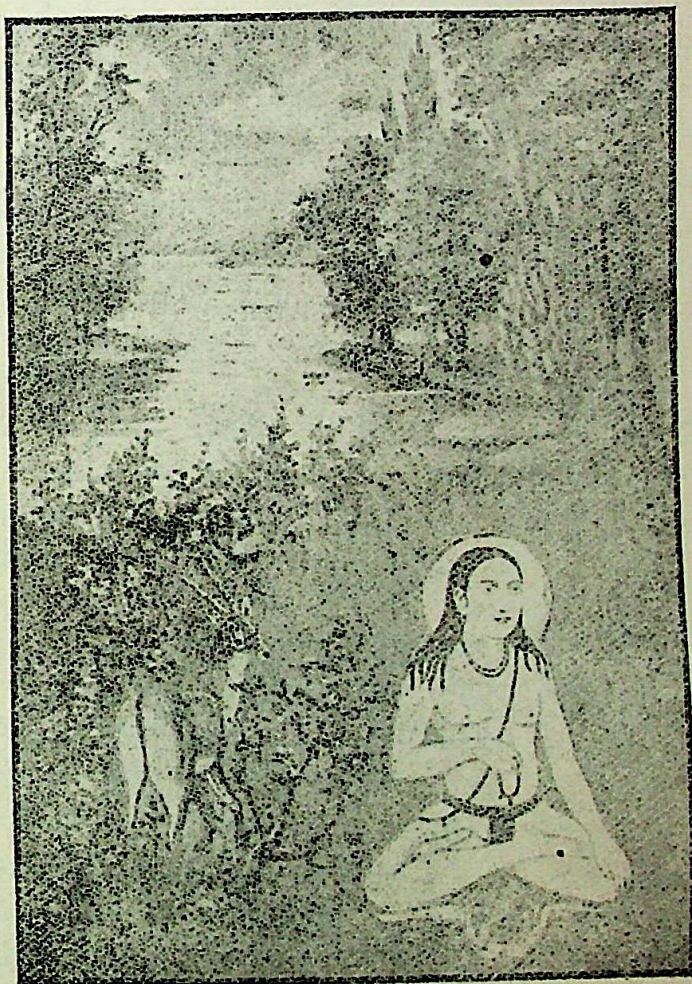
प्रधान सम्पादक
आचार्य भद्रसेन वैद्य

सम्पादक मण्डल
पं० सरयूप्रसाद शास्त्री
श्री रमेशचन्द्र सिंह सेगर
श्रीमती अनुसूया देवी
श्री गोविन्दराव जाना

कार्यालय

शारदा प्रतिष्ठान
सी०के० १५।५१ सुडिया,
बुलालाना वाराणसी-१

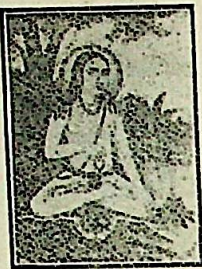
भगवान श्रीचन्द्राचार्य अभिनन्दनाङ्क



तपश्चर्याचेताः शमदमयुतो योगकलितः ।

मुनीन्द्रः श्रीचन्द्रः पुरहरवपू रक्षतुतराम ॥

॥ श्री ११०८ उदासीनाचार्यं जगद्गुरु श्रीचन्द्रो विजयतेतराम् ॥



श्रीचन्द्रस्तोत्रम्

उदासीनाचार्यं, निगमजरसाम्बादनपरं,
महेशं, कारुण्याज्जगति मनुजस्याकृतिधरम् ।
अयंचन्द्रः साक्षादितिजनकुलैः संस्तुतमुखं,
नमामः श्रीचन्द्रं गुरुमनुपमं संसृतिभिदम् ॥१॥

मुदा बाल्ये मुक्ताफलवितरणेनाप्तयशसं,
वने योगारूढं, वनपतिभिरासेवितपदम् ।
निधानं विद्यानामतुलमभिमानं गुणवतां,
नमामः श्रीचन्द्रं गुरुमनुपमं संसृतिभिदम् ॥२॥

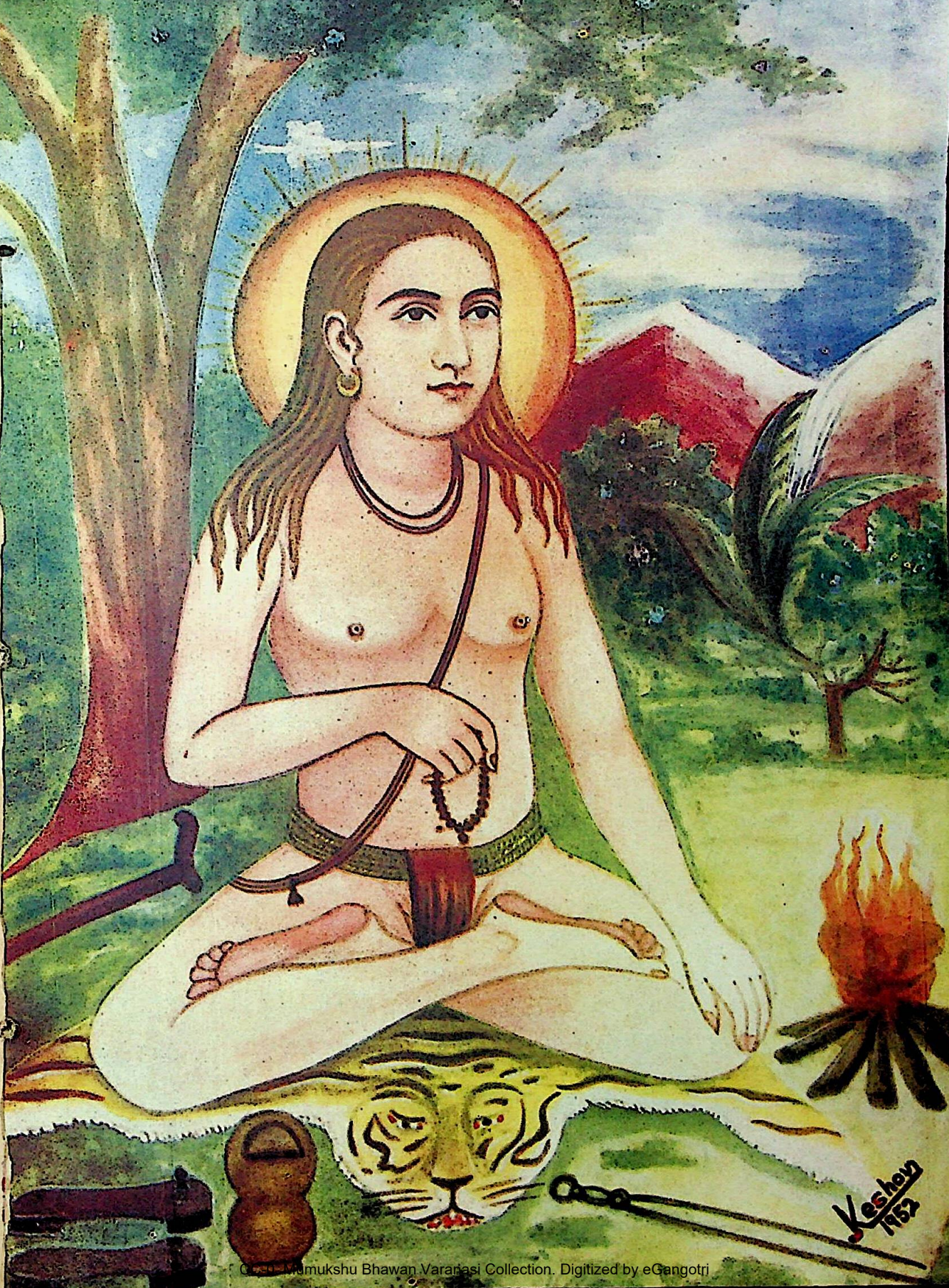
विवाहे वैराग्यात्समधिगतयोगीन्द्रपदविं,
विवादे वैदुष्याद्विहसितसुराचार्यपदविम् ।
श्रुतेः सारंधृत्वा प्रकटितसुधमैकहृदयं,
नमामः श्रीचन्द्रं गुरुमनुपमं संसृतिभिदम् ॥३॥

स्वतः सांख्यन्यायाप्रतिममपि भाष्यादिकृतिषु,
प्रगल्भं नायासं समधिगतमाहेस्वरपदम् ।
यमाहुर्मामांसातरणिसिति तत्त्वैकनिपुणा,
नमामः श्रीचन्द्रं गुरुमनुपमं संसृतिभिदम् ॥४॥

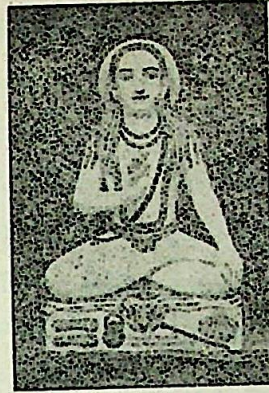
समाधौहृत्पद्मादुदितशुचिनादेन मुदितं,
प्रहृष्यद्रोमाणं, हिमगिरिशितोच्चासनपदम् ।
परब्रह्मानन्दे विगलितकपायं मुनिवरं,
नमामः श्रीचन्द्रं गुरुमनुपमं संसृतिभिदम् ॥५॥

विजेतारं शाक्तागमपथसमासक्तमनसां,
निदेषारं तुर्याश्रमपरमतत्त्वस्य जगताम् ।
प्रभुं, विज्ञातारं भवभयविभंगैकसरणिं,
नमामः श्रीचन्द्रं गुरुमनुपमं संसृतिभिदम् ॥६॥

पुनानं म्लेच्छानामपि च दुरितक्लिन्नमनसां,
शरण्यं भक्तानां निरवधिमनन्तं सुमहसाम् ।
पृणन्तं वेदान्ताभिहितपरमानन्द पुरुषं,
नमामः श्रीचन्द्रं गुरुमनुपमं संसृतिभिदम् ॥७॥

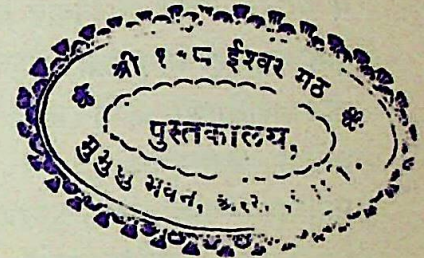






ॐ जयति जयति श्रीचन्द्राचार्य ॐ

परमानन्द संदेश



दुख खराडन परमानन्द मराडन, है इस पत्र का भाव ।
पढ़ै सुने अमलो बने, सो लख पावै प्रभाव ॥

वर्ष २
अङ्क ५

वाराणसी फाल्गुन २०१८ मार्च १९६२ ई०

मूल्य-५० नये पैसे
वार्षिक-५) रुपये

नमस्कार

सुशीलान्सदाचारनिष्ठान्पवित्रान्—

हरिं वा हरं वा समं सेवमानान् ।

स्वशास्त्रेषु दक्षान्परब्रह्मनिष्ठा—

नुदासीनसाधून्नमस्ये नमस्ये ॥१॥

उत्तम स्वभाव वाले, वेद तथा शास्त्रमें प्रतिपादित साधुओंके कर्तव्यमें तत्पर, स्वयं पवित्र तथा सदुपदेशों द्वारा दूसरोंको पवित्र करने वाले, भगवान् विष्णु तथा शंकरकी समान रूपसे पूजा तथा स्तुति करने वाले, वेद-वेदान्तादि शास्त्रोंमें प्रवीण, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप शुद्ध-ब्रह्ममें आस्था वाले उदासीन साधुओं को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१॥

वचोमाधुरी सत्यतोषी दया च,
तथा सौम्यता यत्र नित्यं वसन्ति ।
मुदा तानुदारान्वरिष्ठान् गरिष्ठा—

नुदासीनसाधून्मस्ये नमस्ये ॥२॥

जिनकी वाणीमें माधुर्य, व्यवहारमें सत्यता, मनमें सन्तोष, अन्तःकरणमें दया तथा स्वभाव में सरलता नित्य ही निवास करते हैं, और जो दानशील, पूज्यतम तथा श्रेष्ठतम है उन उदासीन महात्माओं को मैं प्रसन्नतापूर्वक बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥२॥

महावाक्यमेतत्समाकर्ण्य सम्यग्

गुरुणां मुखादेव ये भावयन्तः ।

विमाव्योपपत्तिं च कुर्वन्ति ये ता—

नुदासीनसाधून्मस्ये नमस्ये ॥४॥

जो, 'तत्त्वमसि' (तुम परब्रह्मस्वरूप हो) 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं परब्रह्मस्वरूप हूँ) 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (जीव परब्रह्मस्वरूप है) तथा 'अयमात्मा ब्रह्म' (यह जीवात्मा परब्रह्मस्वरूप है) इन महावाक्योंको, गुह्यके मुखसे सुनकर भली-भाँति चिन्तन करते हैं तथा उपरोक्त भावनाको मनन और निदिध्यासन द्वारा युक्तियुक्त करते हैं— उन उदासीन महात्माओं को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥४॥

महोग्रं तपन्तस्तपो येऽपि वामे

तथा दक्षिणे दक्षिणाः पुष्पतुल्याः ।

अहं दोषगन्धानहं तान्सुपात्रा—

नुदासीनसाधून्मस्ये नमस्ये ॥६॥

चारो दिशाओंमें एक एक धूनी जलाकर

तथा सूर्यको पाँचवाँ मान उनके बीचमें आसन जलाकर जो तपस्या करते हैं, जो अपकारी तथा उपकारीके प्रति पुष्पके समान सम-भावसे वर्ताव करते हैं, जिनकी दृष्टिमें दोष नहीं है अर्थात् सबमें ईश्वरकी सत्ता मानकर एकभावसे देखने वाले—उन अतीव-योग्य उदासीन महात्माओं को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥६॥

स्वशुद्धये श्रुतो कर्मकाण्डं हृदश्च

तथोपासनाबुद्धिशुद्धौ विवेकः ।

विदित्वेति वादं न कुर्वन्ति ये ता—

नुदासीनसाधून्मस्ये नमस्ये ॥८॥

“वेदमें कर्मकाण्ड अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये, उपासना काण्ड मनकी शुद्धि अर्थात् चित्तकी एकाग्रताके लिये तथा ज्ञानकाण्ड संशय विपर्यय आदिसे रहित आत्म-ज्ञानके लिये है” ऐसा जानकर उपरोक्त तीनों काण्डोंमें जो वाद-विवाद नहीं करते हैं उन उदासीन साधुओंको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥८॥

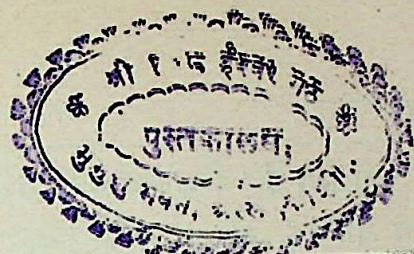
यदीयं शुभं दर्शनं पुण्यहेतु—

यदाभाषणं वाङ्मलं हन्ति तूणम् ।

सदा निर्मला भीष्ममातेव ये ता—

नुदासीनसाधून्मस्ये नमस्ये ॥१३॥

जिनका शुभदर्शन अभ्युदय और निःश्रेयसका हेतु है यही शास्त्र बताता है, जिनका सदुपदेश मन, वाणी तथा कर्मके दोषोंको शीघ्र ही दूर कर देता है तथा जो भीष्ममाता [गङ्गा] के समान सदा पवित्र रहते हैं उन उदासीन महात्माओंको मैं बार बार नमस्कार हूँ ॥१३॥



उदासीन मुनियों का उपकार

महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज

०

युधिष्ठिरकी प्रथम शताब्दीसे लेकर विक्रम की १६ वीं शताब्दीके अन्त-तक उदासीन महा-पुरुष समय-समय पर सदा ही देश और जाति-की रक्षा करते आये हैं। साधनोंकी भिन्नता में भी लक्ष्यकी एकता रही है। महाभारतके युद्धके बाद लोगोंमें कुछ निर्बलता आने लगी थी। इसको दूर करनेके लिये उदासीन जयमुनि ने लोगोंको उनके पूर्वजोंके इतिहास सुना सुनाकर उन्हें सावधान किया। इसी उपकारकी कृतज्ञतामें जनताने उनके स्मारक भवन जगह-जगह पर बनवाये।

युधिष्ठिरकी ८ वीं शताब्दीमें वेद विरोधी चार्वाकोंका दमनकर पुनः वैदिक सिद्धान्तों पर लोगोंको विश्वास दिलाने वाले पूज्यपाद पद्ममुनि थे। इन्होंनेही रुद्रमन्त्र सिखाकर पाणिनिको लौकिक और वैदिक व्याकरण लिखनेके लिये उत्साहित किया था। आप क्रियात्मक योगके अद्वितीय ज्ञाता थे। श्रुति-सिद्ध मुनिने वैदिक शब्द संग्रहात्मक निघण्टुकी रचना करके वैदिक साहित्यपर महत्वपूर्ण उपकार किया। महर्षि यास्कने आपसे उस निघण्टुको लेकर उसपर अपना निरुक्त-ग्रन्थ लिखा। ईसासे साढ़े छः सौ वर्ष पूर्व भारतमें जब बुद्ध धर्मके विचार अधिक बल पकड़ गये थे तब

वैदिक सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिये सुवेशमुनिने स्थान स्थान पर वेद विद्यालय स्थापित करवाये। पंजाबकी ओर भाग रहे चन्द्रगुप्तको सुपत्यमुनि का वीरताका उपदेश देना, और अभयमुनिकी दिव्यशक्तियों द्वारा अशोकके बेटे कुनालकी आँखोंका अन्धता होना ऐतिहासिक दृष्टिसे कुछ कम उपकारकी चीजें नहीं हैं। विश्वविख्यात कविवर कालिदासके गुरु चन्द्रमुनिने भारतीय काव्यकला पर अधिक उपकार किया है। विक्रमकी ८ वीं शताब्दीमें हारीतमुनिके अद्भुत चरित पर ध्यान देनेसे यह बात निस्संदेश सिद्ध हो जाती है कि वे भगवान् कृष्णकी तरह पूर्ण कर्मयोगी थे।

हम यहाँसे आगेके मुनियोंके जीवनमें एक विशेषता पाते हैं, वह यह है कि हारीतसे पूर्वके मुनियोंका कार्य क्षेत्र धार्मिक प्रचार तक परिमित था। सम्भव है उनके धार्मिक आन्दोलनोंकी तहमें नैतिक सुधार भी छिपे हुए हों। परन्तु इस समय तक किसी मुनिने नैतिक क्षेत्रमें खुल्लमखुल्ला भाग नहीं लिया था। महापुरुष समयकी सूक्ष्म गतिसे अच्छी तरह परिचित होते हैं। वे उसीके अनुसार जगदुपकारार्थ अपने कार्य क्षेत्रका रुखभी

वैसाही बना लेते हैं। विक्रमकी ७वीं शदी तक भारतीय जनताका अपना घरका कलह था। बुद्ध धर्मके अनुयायीभी अपने यहाँ के ही थे। यदि कोई हिन्दु राजा होता था, तो भी वह भारतका ही हितचिन्तक होता था और यदि कोई बौद्ध किसी प्रान्तका शासक बन बैठता था तो वह भी वहाँकी सम्पत्तिको उसी प्रान्तके हित में व्यय करता था। उक्त नैतिक स्थितिसे भारतका अधिक अहित होनेका भय न था। अतएव उस समयके श्रौतचतुर्थाश्रमियों ने स्थानिय नैतिक स्थितिमें हस्ताक्षेप करना उचित न समझा। हारीतमुनिके समय हम देशकी स्थितिको किसी और ही रूपमें पाते हैं। विदेशियोंके आक्रमणोंसे जनता भयभीत हो रही थी, और विधर्मी लोग भारतको लूटकर कङ्गाल बना देने पर तुले हुए थे। ऐसे समयमें हारीत-मुनिने अपने कार्य क्षेत्रकी सीमाको धर्मके दायरे से आगे बढ़ा दिया। धर्मकी नैयाका कर्णधारत्व

कुमारिलको सौंपकर उदासीनमुनि हारीतने नैतिक क्षेत्रका सेनापतित्व वीरवर वप्पाको दे दिया। धन्य है हारीतमुनिकी विचित्र महिमा। आप तटस्थ रहकर तमाशा देख रहे हैं और कुमारिल तथा वप्पा किस प्रकार राष्ट्रके धर्म और धनकी रक्षामें प्राणपणसे लड़ रहे हैं।

इधर कुमारिल, प्रचण्डपवनके आगे मेघोंकी भाँति बौद्धोंको परास्त कर रहा है तो उधर वप्पाकी तलवार अपने पराक्रम दिखा रही है। हारीतमुनि अपनी दिव्य दृष्टिसे दोनों वीरोंके अद्भुत कार्यों को दूरसे ही देख रहे हैं। लोक-प्रिय और अविनाशी मुनिके अनुकरणीय चरित भी भारतके इतिहासमें कम महत्व नहीं रखते। कहनेका तात्पर्य यह है कि भगवान् सनत्कुमार के जीवनसे लेकर अब तक हम जिस किसी मुनिके जीवनकी ओर जरा ध्यानसे देखते हैं, तो हमें उसके जीवनका लक्ष्य एक उच्च-आदर्श दिखाई देता है। —०—

मुनि प्रशंसा :— श्री १०८ स्वामी हरिनामदासजी महाराज

विश्वपर मुनियोंका उपकार अनुपम है। सभी मुनियों की प्रशंसा करते हैं—स्वयंवेद भगवान् भी मुनियों की प्रशंसा अत्यन्त प्रसन्नता से करते हैं—

शुभ्रो वः शुभः ऋद्धो मनासो द्युतिमु-
निरिव शर्घस्य धृष्णो । (ऋग्वेद म० ६-सू०
५६ म० ८)

इस मन्त्रमें वायु देवता को आशीर्वाद दिया गया है। इसमें कहा गया है—हे वायु देवता शत्रु दमनमें आपकी गति मुनि महात्माओं की भाँति हों—अर्थात् मुनि लोग जिस तरह

दुमरे की बुरी वासनाओंके दमनमें सिद्धहस्त होते हैं इसी तरह आप भी अग्रतिहत गति वाले हों।

उक्त मन्त्रमें मुनि महात्माओंके जीवन की पवित्रतापर काफी प्रकाश पड़ता है। धन्य हैं वे मुनि लोग जिनके पवित्र आचरण की प्रशंसा स्वयं वेद भगवान् करते हैं।

यही कारण है कि मुनि लोगोंके चरणोंमें विश्व भर की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ स्वयं आकर झुकती थीं। उपकारी मनुष्य की पूजा सर्वत्र हुआ करती है। ऋग्वेदके एक मन्त्रमें लिखा (शेष पृष्ठ ८ पर देखिये)

भगवान श्रीचन्द्र मुनिके

अवतार का प्रयोजन

भगवान श्री चन्द्रजी महाराज शंकर के अवतार हुए हैं। अतः अणिमादिक सिद्धियोंका उनमें होना स्वाभाविक है। १५वीं शताब्दीमें यवनोंके अत्याचारोंसे भारतीय जनता त्राहि-त्राहि कर उठी थी। अनुभवी लोगोंको यह विश्वास हो गया था कि अब वैदिक सिद्धान्तोंकी रक्षा का कार्य एक कठिन समस्या है। ऐसी स्थिति में परमात्माकी किसी शक्तिका मनुष्यरूपेण यहाँ पर पहुँचना अत्यावश्यक था। अतएव भगवान शंकर जी महाराज १६वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें श्रीचन्द्रके रूपमें पंजाबमें अवतीर्ण हुए। इस अवतारके प्रधान पाँच लक्ष्य थे—
 प्रथम—सदियोंसे सूख रही श्रौतचतुर्थाश्रम लताको पुनः हरी भरी करना। द्वितीय—इस्लाम धर्मोपदेशक मौलवी, मुल्ला और पीरोंके द्वारा मोली-भाली जनताके मनमें हिन्दु-धर्मके लिए अश्रद्धाके और इस्लामके लिए श्रद्धाके जो भाव जमा दिये गये थे, अपनी अद्भुत सिद्धियाँ दिखाकर उन्हें दूर करना। विपत्ती लोग छल, कपट और पाखण्डसे हिन्दु जनताको सब्जबाग दिखाकर विधर्मी बना रहे थे। उनकी प्रतिद्वन्दितामें आपको भी अपने अलौकिक चमत्कार दिखाने पड़े। तृतीय-भारतकी नैतिक दशा सुधारनेके लिए कई एक अच्छे अच्छे दृढ़प्रतिज्ञ वीरोंको

उत्पन्न करना। तान्त्रिकोंके अनाचारको हटाना और पञ्चदेवोपासनाके रहस्य समझाकर शैव-वैष्णव कलहको मिटा देना चतुर्थ और पञ्चम प्रयोजन हैं। उक्त पाँचोंमेंसे प्रधानता प्रथमकी ही है। शेष चार गौण हैं। भगवान इस बातको भलिमाँति जानते थे कि श्रौत चतुर्थाश्रमके सुधारसे भारतका भविष्य अधिक सुधर जायगा, अतएव आपने निवृत्तिको ही प्रधानता देते हुए प्रवृत्तिको अपनाया। उत्तरकाशीकी यात्राके विचारको छोड़कर विधर्मियों द्वारा पीड़ित एवं दुःखित हिन्दु जनताकी रक्षाके लिए आपका सिन्धमें पहुँचना व्यक्त करता है कि आपके मनमें केवल निवृत्तिका ही राज्य न था। हाँ, यह अवश्य था कि आपका जीवन आरम्भसे अन्त तक निवृत्ति प्रधान ही रहा है। आपसे लगभग ८ शताब्दी पूर्व शंकराचार्य हुए। पाठकोंको स्मरण होगा, उस समय और इस समयकी स्थितियोंमें आकाश पातालका अन्तर है। उन दिनोंमें बौद्धोंसे सामना करना था। वे इतने छली कपटी एवं अत्याचारी न थे जितने मुसलमान भारतके लिए सिद्ध हुए। तब तो केवल सिद्धान्तों पर कलह था। अतः शंकराचार्यकी अपेक्षा भगवान श्रीचन्द्रको अधिक प्रयास करना पड़ा। क्योंकि इनका कार्यक्षेत्र

विस्तृत एवं अधिक कण्टकाकीर्ण था। पाठक इस बातसे भली-भाँति परिचित हैं कि महापुरुषों को तो योगशास्त्रके नियमानुसार संयमका सहारा लेकर दिव्यैश्वर्यकी प्राप्ति होती है। इधर भगवान् श्री चन्द्रजी तो आरम्भसे ही तमाम अणिमादिक सिद्धियों पर अपना अधिकार रखते थे। अतएव आपका शैशव भी लोकोत्तर था। अवतार धारण करते समय शिवस्वरूपमें प्रकट होना और जटा भस्मादिकोंसे भूषित होकर बचपनकी लीलाओंसे माता-पिता और लोगोंको चकित करना आपके जीवनकी महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। श्री नानक देवजी सिद्ध महारमा थे। वे आपके शिव स्वरूपसे पूर्णतया परिचित थे। बचपनमें समाधि लगाकर बैठना और जङ्गलोंमें जाकर सर्प एवं सिंहादिक वन्य पशुओंको अपने प्रभावसे प्रभावितकर लेना इस बातको सिद्ध करता है कि आप एक साधारण शिशु न थे। पठित लोगोंको तो उसी समय विश्वास हो गया था कि अन्यायका नाश करनेके लिए आपका अवतार हुआ है। यद्यपि आप समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता आरम्भ हीसे थे फिर भी आपका काश्मीर में उच्चशिक्षा प्राप्त करने जाना केवल लोक

मर्यादाकी रक्षाके लिए था। बहुतसे पाठकोंके मनमें यह बात जाननेकी जिज्ञासा होगी कि जब भगवान् समस्त सिद्धियों पर अपना पूर्ण अधिकार रखते थे तो उन्होंने भारतमें मुसलमानोंका आना-जाना सत्रथा वन्द क्यों नहीं कर दिया? इसका सीधे शब्दोंमें यह उत्तर हो सकता है कि किसी शक्तिका अवतार लोगोंमें नये भाव और जाग्रति उत्पन्न करनेके लिए हुआ करता है। वह नहीं चाहता कि ईश्वर के नियमानुसार और जीवोंके अदृष्टोंके सहारे कार्य कर रही प्रकृतिके अद्भुत यन्त्रमें हस्तक्षेप किया जाय। ऐसा करनेसे संसारके संचालक ईश्वरीय नियमोंमें गड़बड़ मच जानेका भय रहता है। अतएव भगवान् श्री चन्द्रने महाराणा प्रतापकी पीठ तो ठोक दी की उठो! अपने देशकी रक्षाके लिए प्राणार्पणसे लड़नेके लिए तैयार हो जाओ! परन्तु स्वयं अपनी दिव्य-शक्तिसे किसी यवनविजेताको नष्ट अष्ट नहीं करते। इसकी तहमें यह रहस्य छिपा हुआ है कि ऐसा करनेसे लोग अपने अदृष्टानुसार कार्य भी करते रहें और अवतार धारणका लक्ष्य भी सिद्ध हो जाय।

—श्रौतमुनिचरितामृतसे उद्धृत

मुनि प्रशंसा (पृष्ठ ६ कालम २ से आगे)

है कि देवराज इन्द्र मुनि लोगों के परम मित्र अर्थात् उनके सहायक थे। देखिये कितने हर्ष की बात है—मुनि लोगोंने तपके प्रभावसे तीनों लोकोंमें अपने महत्व का सिक्का जमा लिया था।

“इन्द्रो मुनीनां सखा” (ऋग्वेद म० ८, सू० १७, म० १४)

इन्द्र मुनियोंके परम मित्र थे। यह बात दावेसे कही जा सकती है कि विश्वके कल्याणकारी मुनि लोग ही हुए हैं। क्योंकि चतुर्थाश्रम

में संसारिक उलझने तो दूर हो जाती हैं—अतः हमारे मुनि लोगोंने मनुष्य जातिपर जो-जो उपकार किये हैं वे लिखनेमें नहीं आ सकते।

यास्क मुनिने निरुक्तमें मुनि शब्द का अर्थ किया है “मुनिर्मननात्” और एक जगह ऐसा लिखा भी मिलता है—“वेद शास्त्रार्थ-तत्वावगन्तारो मुनयः” अर्थात् वेद और शास्त्रों के तत्व को पहुँचे हुए महापुरुष मुनि कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं।



भगवान् श्रीचन्द्रदेव का संक्षिप्त-परिचय



०

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

इम उक्तिके अनुसार पंजाब प्रान्त स्थित लाहौरसे ३० कोस पश्चिम तलवण्डी ग्राममें संवत् १५५१ विक्रमी भाद्रपद शुक्ला नवमीके दिन श्रीनानकदेवजी की धर्मपत्नी सुलक्षणा देवीजीकी पावन कुत्तिसे भगवान् शंकर श्रीचन्द्र रूपमें आविर्भूत हुए। “नानक सूर्योदय” नामक इतिहास ग्रन्थमें लिखा है कि जिस प्रकार दानवीर कर्ण क्षात्रधर्मके चिह्न कवच, कुण्डलादि लेकर पैदा हुए थे उसीप्रकार उदासीनाचार्य भगवान् श्रीचन्द्रजी अपने भावी अनुष्ठेय धर्मके सूचक जटाभस्मादि वैराग्यके चिह्न लेकर अवतीर्ण हुए।

अवतारी महापुरुषोंकी लीलाएँ आविर्भाव कालसे ही युग परिवर्तनकी सूचनाएँ देने लग जाती हैं। भगवान् श्रीचन्द्रजीका शिशु एवं बाल्य जीवन चमत्कारी एवं लीलामय है। सद्-ज्ञानका प्रचार और उपदेश देनेकी प्रवृत्ति आपके अन्दर बाल्यकालसे ही दृष्टिगोचर थी। भगवान् का सबसे प्रिय खेल था, सभी बाल साथियों को बैठाकर उन्हें उपदेश देना। जहाँ भी जाते अपने अलौकिक सौन्दर्य, अद्भुत ज्ञान और

चमत्कारसे सभीको मुग्ध कर लेते थे। सात वर्षकी आयुमें भगवान् माताजीके साथ अपने ननिहाल पक्खोके ग्राम गये। वहाँ भी बाल-भगवान् के स्वयं प्रकाशित ज्ञानचर्चाकी धूम मच गई। यहीं पर बाल मण्डलीके बीच हरि कथा कहते हुए श्री चन्द्रसे मौलवी नूरदीनने कई प्रश्न किए। भगवान् के अकाख्य और सर्वमान्य उक्तियोंको सुनकर मौलवी साहब बहुत प्रभावित हुए और उन्हें ईश्वरीय मनुष्य समझ कर बार-बार प्रणाम किये। भगवान् की अपूर्व प्रतिभा और दिव्य-शक्तियोंकी चर्चा दूर नजदीक सर्वत्र फैल गई। पण्डित विष्णुदास वैष्णव, सुखदयालु आदि विद्वान लोग भगवान् का यशोगान सुन दर्शनार्थ आने लगे।

अल्पकालमें ही भगवान् ने अक्षरज्ञान और प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण कर ली। उच्च शिक्षा प्राप्तिके लिए भगवान् काश्मीर गये। आपकी प्रतिभा और स्वयं प्रस्फुटित होने वाली योग्यता को देख कर अध्यापक श्री बुरुपोत्तमजी अत्यन्त प्रसन्न रहा करते थे। कुछ ही दिनोंमें आपका

असाधारण वैदुष्य प्रस्फुटित हो गया। उस समयके दिग्गज विद्वान भी आपके गम्भीर अध्ययन और तर्कपाटवका लोहा मान गये थे। छात्र जीवनमें ही भगवानने अनेक शास्त्रार्थोंमें विजय प्राप्त कर विद्वद्समाजको चकित कर दिया था। इस समय भगवानकी अवस्था १४ वर्षकी थी। आपको विद्यालयके आचार्य श्रीचन्द्रमौलि कहा करते थे।

अध्ययनपूर्ण हो जाने पर घर जानेका उनका संकल्प नहीं था। वे आश्रम परिवर्तन कर लोक कल्याणकी धुनमें थे। इसके लिए उन्हें गुरुकी तालास थी। भगवान जंगलोंकी नीरवतामें सामयिक समस्याओंको सुलभानेका हल ढूँढ़ा करते थे। भगवानने यह दृढ़ निश्चय किया कि जब तक मैं चतुर्थाश्रम नहीं ग्रहण करता तब तक देशकी विराट सेवा नहीं कर सकता। काश्मीरमें उन दिनों अविनाशी मुनिकी धूम मची हुई थी। मुनिजीके उपदेशोंसे प्रभावित होकर भगवानने आपहीसे दीक्षा लेनेका निश्चय किया। यहीं काश्मीरमें ही आषाढ़ पूर्णिमाके दिन पूज्य श्री अविनाशी मुनिजीने भगवान श्रीचन्द्रको उदासीन श्रौतचतुर्थाश्रम की दीक्षा देते हुए गुरुपदेशके रूपमें कहा— “बेटा, यह जो कुछ हो रहा है सब केवल मर्यादा पालन और आपकी मायाका खेल है। इस समयमें जिस नियमका पालन करता हुआ आपको दीक्षा देकर उपदेश कर रहा हूँ, वह नियम भी आपका ही बनाया हुआ है। मुझे ज्ञात है, मैं जो कुछ भी कहना चाहता हूँ उसे आप पूर्णतया जानते हैं। वह है श्रौत

चतुर्थाश्रमका पुनरोद्धार। इसकी लता कुम्हलाकर खूब रही है, वैदिक सिद्धान्तों पर चारों ओरसे प्रहार हो रहे हैं। आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं।”

दीक्षाका कार्यक्रम समाप्त हुआ। कुछ काल तक भगवान गुरु चरणोंमें रहे। इसके बाद देशकी पुकार सुन भगवानने ११ वर्षोंका भारत भ्रमणका कार्यक्रम बनाया। ५ वर्ष नेपाल, तिब्बत, भूटान आदि पहाड़ी स्थलोंमें व्यतीत हो गये। छठे वर्ष गंगोत्तरी, जमनोत्तरी, केदार, बद्रीनारायण, हरिद्वार, दिल्ली होते हुए संवत् १५८१ के कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको भगवानने मथुरामें यमुना स्नान किया। तत् पश्चात् पवित्र लीलाभूमि वृन्दावन, गोवर्धन, गोकुल, बरसाना आदि स्थानोंका दर्शन किया। इस यात्रामें भगवान तीर्थोंका दर्शन करते हुए साथ ही देशकी वर्तमान स्थितिका भी स्वाध्याय करते जाते थे। माघ संक्रान्तिके दिन भगवान तप्तग्राममें पहुँचे। यहाँसे आधरा, इटावा होते हुए भगवान रामके जन्म स्थानका दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। प्रयागराज होकर संवत् १५८२ को शिवरात्रिके समय भगवान अपने काशीधाममें पहुँच गये। यहाँ आपका विद्वद्-वर्ग द्वारा भव्य स्वागत हुआ। काशीसे गया पटना राजगृह, मगध नवद्वीप, बंगाल आमासकी लम्बी यात्रा करते हुए भगवान् जगन्नाथपुरी पहुँचे। संवत् १५८४ चैत्र शुक्ला पंचमीके दिन भगवानने वहाँ श्रद्धालु सोमनाथको उदासीन मतकी दीक्षा देकर सोम देव नाम रखा।

इस प्रकार समस्त देशका भ्रमण करते हुए

भगवानने धर्मकी रक्षा की। आपका हृदय हर समय आत्मचिन्तन, देशोन्नति, दरिद्र नारायणकी सेवा, पीड़ितों पर दयासे ओत-प्रोत रहता था। आप अत्यन्त उदार और भक्त वत्सल थे। सारा संसार आपको गुरु रूप मानता था। अमेरिका, रूस, चीन, जर्मन, जापान, ब्रूटेन आदि सभी देशोंको आपने पदार्पण कर पवित्र किया था। लन्दनमें पहुँचने पर एडवर्ड षष्ठ जो प्रिंस हेनरी की मृत्युके बाद गद्दी पर बैठा था आपके गौरवर्ण, उज्ज्वल देदीप्यमान भव्य तेज और सर्वभाषाओंमें प्रकाण्ड विद्वत्ताको देखकर दंग रह गया।

भगवान पुनः काश्मीरमें सात वर्ष तक रहे और वहीं चारों वेदों पर भाष्य रचा। संवत् १५९५में भगवान काश्मीरसे पेशावर चले गये। काबुल, कान्धार, विलोचिस्तान होंकर पुनः पेशावर लौट आये। संवत् १६०० में हरिद्वार होकर नगरठट्टा पहुँचे। वहाँ हिंगलाज देवीका दर्शन करनेके लिये भक्तगिरि महात्मा ३६० शिष्योंके साथ पधारे और भगवानकी अद्भुत शक्तियोंसे प्रभावित होकर अनुयायियोंके सहित शिष्य बन गये। भगवानने उनका नाम भक्त-भगवान रखा।

हिन्दुओंके दुःखसे द्रवित होकर भगवानको काश्मीर आना पड़ा। काश्मीर पहुँचकर भगवानने उस समयके मुसलमान शासक याकूबशाहको शिक्षा देते हुए श्री चन्द्रचिनारकी स्थापना की। अन्तमें वह भगवानकी शरण आया और क्षमा याचना की।

सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठा पर देशको पहुँचाने तथा ज्ञान ज्योति से मानसतमको हरनेका जो स्तुत्य प्रयास किया गया उसमें देवादि देव जगद्गुरु श्रीचन्द्र देवजी महाराजका नाम श्रद्धा एवं आदरसे लिया जाता है और लिया जाता रहेगा। हम उन्हें युग पुरुष और पथद्रष्टाके रूपमें पाते हैं। इन्होंने भारतीय धार्मिक आध्यात्मिक स्वातन्त्र्य आन्दोलनमें सक्रिय सहयोग प्रदान कर प्राचीन गौरवकी रक्षाका भार सम्भाला। अक्षय गुणोंसे युक्त ईश्वरीय समृद्धि प्राप्त उदासीनाचार्य जगद्गुरु श्रीचन्द्र देवजी महाराज ने सभी सम्प्रदाय एवं सर्व धर्म समन्वयकी भावनाको चरितार्थ कर दिखाया।

डेढ़ सौ वर्ष तक बाल रूपमें अवस्थित रह अपना कार्य पूर्णकर भगवान शंकरके अवतार उदासीनाचार्य जगद्गुरु श्रीचन्द्राचार्यजीने शिष्योंको अन्तिम दर्शन दिया और रावीके तटपर रखी हुई शिलाको सम्बोधित करते हुए कहा—“पार लगादे रामकी प्यारी।” शिला जलमें तैर गई और भगवान अनन्तकी ओर अमरनाथकी गुफा में अन्तर्हित हो गये। परन्तु उनकी अमर वाणी आज भी गूँज रही है। भगवान उदासीन साधुओंके भेषमें एकसे अनेक होकर आज भी लोक कल्याण करते हैं।

—श्रौतमुनि चरितामृत और श्रीचन्द्र चन्द्रिका के आधारपर लिखित।



भगवान श्रीचन्द्रके जन्म-समयकी स्तुति

भये प्रगट महेशा मिटे कलेशा भक्तन के हितकारी ।
 हरषित महतारी रूप निहारी शम्भु सदा त्रिपुरारी ॥
 कर डमरू राजै भाल विराजै चन्द्र ताप कर हारी ।
 भस्मी तन सोहै मुनिमन मोहै नील कण्ठ मदनारी ॥
 स्तुति करती मुद मन भरती कण्ठ आव नहि बाता ।
 धरि धीरज बोली सब विधि तोली प्रेममगन मनमाता ॥
 उत्पति, पालक अरु संहारक वेद भेद नहि पाता ।
 भक्तन हित लागी जन अनुरागी सुयश जासु जगगाता ॥
 ईश्वर अविनाशी घट-घटवासी नेतिनेति निति वेद कहैं ।
 ममउदर निवासी यह जग हाँसी सुनत बुद्धिभ्रम खाय रहै ॥
 शंभू सुस्वयाये मातु भुलाये चरित जगत में कीन्ह चहैं ।
 शंकर तब बोले आशय खोले सुनत मातु मन प्रेम लहै ॥
 जननी पुनि बोली वचन अमोली धरहु तात शिशुरूपा ।
 शुचि भेष उदासी धरि सुखराशी दे उपदेश अनूपा ॥
 सुनतै निजरूपा कीन्हयों लोपा हूँ बालक सुखरूपा ।
 यह छन्द जो गावै सब सुख पावै सो न पड़ै भवकूपा ॥

उदासीन मुनियों के चमत्कार

महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज



संसारकी सभी जातियोंने अपने महापुरुषों के गौरव बढ़ानेमें भरसक प्रयत्न किया है। यदि किसीने थोड़ा-सा भी उपकार किया तो उसकी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये उसके उपकृत लोगोंने उसके नाम पर बहुत कुछ किया। यही कारण है कि आज वे जातियाँ उन्नत, स्वतन्त्र और धनधान्यसे परिपूर्ण हैं। इसके प्रतिकूल भारतमें अगणित महापुरुष हो चुके हैं। संभव है इतने किसी और देशमें न हुए हों। भारतीय जनता, उनके आदर्श चरित तो दूर रहे, उनके नामसे भी सर्वथा अपरिचित है। क्या यह अधन्यता नहीं? संभव है, जिन महापुरुषोंके उपकारोंसे हिन्दु-जनता आज तक जीवित है उन्हींके उपकारोंको भुला देना ही इसके पतनका मुख्य कारण हो। हमें तो इस बात पर बड़ा खेद होता है कि ऐतिहासिकोंकी लेखनियोंने इतिहासपर सैकड़ों ग्रन्थ लिख मारे परन्तु सिवाय लड़ाइयों की प्रधानताके उनके ग्रन्थोंमें और कुछ लिखा नहीं। सम्भव है ऐसे लेखकोंको महापुरुषोंकी दिव्यशक्तियों पर विश्वास ही नहीं होगा, क्योंकि वे तो स्थूलजगत्को ही सर्वोत्तम मानकर उसीके कार्यों पर अपनी लेखनीको चलाते गये हैं। वे क्या जाने, स्थूलजगत्के

अलावा कोई और जगत् भी है या नहीं। अतएव वे और उनके अनुयायी किसी महापुरुषकी दिव्य शक्ति द्वारा घटित घटनापर उपहास करना आरम्भ कर देते। वे नहीं चाहते कि जो घटना कुछ अलौकिक सी है उसे पुस्तकमें स्थान दिया जाय। क्योंकि उनकी दृष्टिमें ऐसी घटनाएँ हेय एवं निराधार होती हैं। अतएव धार्मिक जगत् का दिव्य इतिहास सूक्ष्म जगत्के ज्ञानसे अपरिचित ऐतिहासिकोंकी अज्ञता एवं असवधानता से भूतकी तहके नीचे दब जानेके कारण हमारे ज्ञानसे बाहर हो चुका है। यही कारण है कि आज हम महापुरुषोंकी दिव्य शक्तियोंसे सर्वथा अपरिचित हैं।

सिद्धियोंके समझ लेनेका सरल उपाय यह है—प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम ये तीन विभाग हैं। रजो विभाग क्रियाशील है। तमो-विभाग से स्थूलता उत्पन्न होती है। सत्त्व विभागका कार्य पर धर्मोंको अपने में लाना है। जब योगी अपने सत्त्वगुणको बढ़ाताही जाता है तो वह प्रकृति पर विजयी होता हुआ अपने निजी सम्बन्धको चेतन (ईश्वर) से जोड़ता जाता है। इस प्रकार चेतनके दिव्य ऐश्वर्य इसमें प्रविष्ट होने लगते हैं। प्रकृति जड़ है। चेतन

की सत्तासे ही अपने कार्य करती है। सत्वगुण के अधिक बढ़ जानेसे जब चेतनके दिव्य ऐश्वर्य योगीमें आ जाते हैं तो योगी पूर्ण संसारकर्त्री प्रकृतिको अपनी दासी बना लेता है। अब उसके लिये कोई भी कार्य असम्भव नहीं होता। पाञ्चभौतिक कार्योंका होना या न होना उसकी इच्छा पर निर्भर होता है। उसके विचार ही दिव्य शक्तियोंके संचालक हो जाते हैं।

योगशास्त्रके नियमानुसार सर्वसाधारण व्यक्ति संयमके द्वारा अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। संयम शब्दमें 'यम' धातु है। इसके साथ 'सम' उपसर्ग लगानेसे संयम शब्द बना है। यम धातु का अर्थ है निग्रह करना अर्थात् किसी पर अधिकार जमा लेना है। संयम शब्दमें यही अर्थ निकलता है कि किसी पदार्थ पर या किसी विषय पर लगातार विचारों का स्फुरण होता रहे। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं कि विचार वहाँ तन्मय होकर तदाकार हो जाय। विचार-संयमके द्वारा मनुष्य में अपूर्व शक्तियोंका विकास होने लगता है। निदर्शनार्थ हम गौतमबुद्ध, ध्रुव, सिकन्दर, नेपोलियन, रावण, हनुमान, व्यास, पाणिनि, कुमा-

रिल प्रभृतियोंका नाम ले सकते हैं। कहनेका भाव यह है कि ऋषि-मुनियोंने अपने अनुभवों द्वारा ऐसे उपाय भी निकाल रखे हैं जिससे प्रत्येक जिज्ञासु संसारके तत्त्वको पहचानकर दिव्यैश्वर्यकी प्राप्ति कर सकता है। संसारमें जिन बातोंको लोग असम्भव समझते हैं वे भी योगशक्तियों द्वारा सम्भव हो सकती है। जब सर्वसाधारणमें ये शक्तियाँ योग द्वारा उत्पन्न हो सकती हैं तो अवतारोंमें इनके होनेमें किसीको सन्देह होना जान-बूझकर इन्कार करना है।

शंकरावतार भगवान् श्रीचन्द्रका चरित आरम्भसे अन्त तक दिव्य घटनाओंसे परिपूर्ण है। पूर्व मुनियोंके जीवन भी ऐसी घटनाओंसे रिक्त न थे। उदाहरणार्थ, अभयमुनिका अशोक के बेटेकी आँखोंका अच्छा करना प्रभृति ऐतिहासिक घटनाएँ साफ लिखी मिलती हैं। मुनियोंकी दिव्य-शक्तियोंमें और भगवान् श्रीचन्द्रकी दिव्य-शक्तियोंमें महान अन्तर है। उनमें इन शक्तियोंका विकास योगके नियमानुसार संयमसे हुआ था और इनमें यह दिव्य ऐश्वर्य स्वाभाविक था, क्योंकि भगवान् श्रीचन्द्र जी शिवके अवतार थे। अवतारमें दिव्यादिव्य शक्तियोंका होना स्वाभाविक है।

कर्म पथ

कैसे पुनः बने यह भारत राम, कृष्णका लीला धाम ।
प्राप्त करे गत गौरव गरिमा, फिर जन-जीवन हो शुचिकाम ।
श्री श्रीचन्द्राचार्य मनस्वी, त्याग सभी संशय उद्भ्रान्ति ।
निकल पड़े सत्वर जय पथपर, छोड़ क्लान्ति विश्रान्ति अशान्ति ।

श्रीचन्द्र द्वारा मोतियों का दान

लेखक—स्वामी गणेशदासजी महाराज

उस दिन प्रातः जब माता जी गृहकार्यों में थीं कुछ व्यस्त ।
आंगन में श्री चन्द्र खेलने और कूदने में थे मस्त ।
उसी समय याचक ने आकर दस्तक दी दरवाजे पर ।
“भूखा हूँ माता जी आकर ले लो मेरी जरा खबर ।”

दौड़ पड़ा नन्हा सा बालक मुट्ठी भर अनाज लेकर ।
लगे भिखारी के कासे में मोती गिरने भर भर भर ।
सहम गया याचक बेचारा, बोला “मुझे न दो यह दान ।
केवल मुट्ठी भर अनाज से जी जाएगा यह तन प्राण ।”

पर वह बालक क्योंकर माने ? वापिस कैसे ले दाने ?
“ले लो इसको, डरो नहीं तुम”—तब समझाया माता ने ।
विस्मित, चकित, थकित वह याचक खड़ा रह गया मोहग्रस्त !
मोती लेकर कैसे जाए दो दाने का जो अभ्यस्त !

भीगे स्वर में फिर वह बोला—“माँ यह बालक परमोदार,
बड़ा भाग्यशाली है यह तो है शिव शंकर का अवतार ।
तेरी गोदी सफल हुई माँ ! मेरी आँखें भी हैं धन्य ।
नाम करेगा निश्चय जग में यह ईश्वर का भक्त अनन्य ।”

धर्माचार्य जगद्गुरु श्रीचन्द्रदेवजी--एक संस्मरण

[महन्त गोपालदास "उदासीन" आयुर्वेदाचार्य, मुं.गेर]

सृष्टि और संहारके बीच प्राणीमात्र एक निमित्त है। संसार मिथ्या है। शरीर अनित्य है। जगतकी सभी वस्तुएँ क्रमिक विकासके अन्तर्गत है। उत्थान और पतनके अभ्यन्तर ही मानव तैरता है, उतराता है। यही द्वैत और अद्वैत की पृष्ठभूमि है। यही दर्शनका अमिट सिद्धान्त है।

लक्ष्यको अनुसरणकर जो भी मानव अनुशीलन करता है। धर्मका आचरण करता है। वह मानवसे भगवानकी संज्ञा पाता है। ईश्वर तुल्य बन जाता है, अपनी एकाग्र निष्ठासे चर्मोत्कर्षतक सिद्धि प्राप्त करता है। उसकी वाणी युग-युग तक व्याप्त रहती, उसकी अनन्य कीर्ति धवल प्रकाशसे विश्व ज्योतिमान रहता। दुनिया उस भटकते हुए अन्धकारमें प्रकाश पुंजको पाकर आगे बढ़ती है। अपनेको पहचानती है। यह भी भारतीय परम्परामें सिद्ध है कि जबकि धर्मका नाश होने लगता अत्याचार, अनाचार, दुराचार, और पापाचारसे प्राणिमात्र त्राहि-त्राहि करने लगता है। वैसी अवस्थामें भगवानको स्वयं इस आर्यावर्तके धर्म क्षेत्रमें अवतरित होना पड़ता है। यह निर्विवाद है। कटु सत्य है, तर्क सिद्ध है।

ऐसे ही संक्रमण कालमें हमारे पथ द्रष्टा धर्माचार्य जगद्गुरु श्री चन्द्रदेवजी का प्रादुर्भाव

हुआ। सतलजका वह सुरम्य तट। पंच नद की वह पावन भूमि। धनधन्य हो गई। कृतार्थ हो गई और हो भी क्यों नहीं तलमंडी का वह छोटा सा पावन गाँव, गुरु नानकका वह अतुलित धाम खिलखिला उठा, हर्षोत्फुल्ल हो गया। ऐसे युग पुरुषको देखकर जिनके कानमें कुण्डल और कवच है। यह तो भगवान शंकर है यह मान हुआ। गुरु नानकदेवने जिनकी हर्षित हो स्तुति, की सुललणाने जिनकी वन्दना की, वह थी पंद्रहवीं शताब्दी भादोंका महीना, नवमी तिथि, इसी दिन सारा संसार इनकी जयन्ती मनाता है। अभ्यर्थना करता है।

धर्माचार्य जगद्गुरु श्री चन्द्रदेवजीने वाल्य कालहीमें अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा मानव मात्रको चकित कर दिया, थकितकर दिया। थोड़े ही कालमें सभी वेद, पुराण, स्मृति धर्म शास्त्र, व्याकरण, साहित्य, न्याय, दर्शन, मीमांसा आदि कोई भी विद्या इनसे अछूता नहीं रहा जिसमें आपने अवगाहन नहीं किया, सभी विद्यामें पारंगत हो गये। काश्मीर जिसका साक्षी बनकर आज भी स्वर्गके सुषमाको बिखेर रहा है। जम्बु जिसके गुणगानको गा रहा है। यह सत्य ही है कि हमारे धर्माचार्यने परम्परागत मुनि प्रणीत सनक, सनन्दन, सनतकुमार प्रभृतिने उदासीन धर्मको प्रशस्त किया, अग्रसर

किया। यह धर्मके धुरीन थे, यह मानी हुई बात है कि उदासीन मतका इन्होंने प्रचार और प्रसार बड़ी लगनशीलताके साथ किया। इनमें एक अलौकिक शक्ति थी, जो मानवके ऊपर हुई-सुई सा कामकर दिखलाती थी, इनके अतीतके इतिहास गुणगरिमासे भरे पड़े हैं।

एक समय की बात है जबकि सन्यास धर्मके सूत्रधार बौद्ध गयाके अधिष्ठाता श्री भगत गिरिजी अपने तीन सौ साठ शिष्योंको साथ लेकर हिंजाल देवीके दर्शनके लिए जा रहे थे। नीरव जंगलमें तपस्या करते हुए, श्री चन्द्र-देवजी महाराजका दर्शन हुआ, गिरिजी उसी आश्रममें आश्रय लिए।

श्री चन्द्रदेवजीने कहा—“बन्धुओ ! इस बीयावान विपिनमें क्यों कष्टकर जाइयेगा, हिंजाल देवी तो स्वयं यहाँ आती है, दर्शन हो जायगा।” भगत गिरिजीको आश्चर्य हुआ कि देवी यहाँ आ कैसे सकती है। प्रातःकाल देवीका पदार्पण हुआ। गिरिजी अपने शिष्योंके साथ श्री चन्द्रदेवजीके शिष्यत्व को ग्रहण कर लिया। ऐसे-ऐसे एक नहीं हजारों उदाहरण हैं।

एक समयकी बात है जबकि हुमायूँ को हमलावरोंने गद्दीसे पदच्युत कर दिया। तब हुमायूँ अशरण शरण श्रीचन्द्रदेवजीकी शरणमें जाकर गिड़गिड़ाने लगा, घुटने टेककर वरदान माँगने लगा, तब श्री चन्द्रदेव जीने आशीर्वाद स्वरूप वरदान दिया—“घबड़ाओ नहीं एक दिन तुम्हारा लड़का दिल्ली के तख्तपर बैठेगा, राज्य करेगा।” वही हुआ हुसैन बानूके गर्भसे अकबरका जन्म हुआ, जो हिन्दुस्तानका न्याय-

प्रिय महान शासक सिद्ध हुआ, हिन्दू मुस्लिम एकताकी उसने नींव डाली, बड़ा ही न्यायप्रिय, समदर्शी राजा हुआ। इससे सिद्ध होता है कि हमारे पथद्रष्टा धर्माचार्यमें कितना चमत्कार था, आशीर्वादमें कितनी अमोघ शक्ति थी।

ये भ्रमणशील तो थे ही, तभी तो इनसे विश्वका कोई भी भू-भाग नहीं छूटा जहाँ आप नहीं गये, पदार्पण नहीं किया। चीन, जापान, अमेरिका, अफ्रीका, जर्मन, इंग्लैंड, इंगलिस्तान अर्विस्तान, जहाँ भी गये उसीकी भाषामें उसी की बोलीमें प्रश्नोंका उत्तर दिया। सदुपदेश किया, एशिया तो चरण चूमता ही था, यूरोप भी, जिसका भाग्यविधाता हेनरी था, उसने भी इनकी मधुर वाणीसे गद्गद् होकर जगद्गुरु मान लिया। आर्यावर्तके इस उदासीन जटा-धारी अद्भुत देदीप्यमान चमत्कारी साधुके सामने अपनी टोपी रख दी।

भारतीय इतिहासमें ऐसा भी एक काल आया, जबकि विधर्मियों द्वारा जाति-पाति, वर्गभेदको मिटानेके लिए कृतसंकल्प होकर प्रयाण किया गया था। अस्त्र-शस्त्रका पक्ष ग्रहण किया गया, परन्तु अहिंसाके परम पुजारी के सामने वह कब टिक सकता था। वह अंजीरका वृक्ष आज भी भारतीय संस्कृतिका प्रतीक होकर युगसे अड़ा है, खड़ा है। इसीके नीचे तो उन्होंने बैठकर हिन्दुत्वकी रक्षा की, अहिंसाका पाठ पढ़ाया था। आज भी उनकी जलाई हुई धुनि प्रज्वलित है।

प्राणिमात्रकी बाल्य, युवा और जीर्णावस्था तो होती ही है। पर हमारे पथ द्रष्टाका

एकही रूप बाल्यकाल सदा एकरस रहा और ढेढ़ सौ वर्ष तक भ्रमणशील रहे। विश्वास और अपनी अमोघ शक्ति द्वारा सभी जनोंको सुख शान्तिसे ओतप्रोत कर दिया। एक नवीन जागृति आ गई, सुसुप्त भावनामें धार्मिक प्रगति की एक अविरल धारा बह गई।

मृत्यु, यह तो स्वयं मृत्युञ्जय थे। रावीका वह पावन तट, जहाँ आजभी वह शिला खन्ड है, जिसपर हमारे धर्माचार्य यह कहकर अन्तरिक्षकी ओर सहा प्रस्थान कर गये कि "पार लगा दे रामकी प्यारी" शिला तैर गई और वह अमरनाथमें अमर हो गये। आज उनकी अमर कीर्ति जल, थल, आकाशमें व्याप्त है। हरस्थानमें मन्दिर बने हैं, संगत खड़े हैं, पूजा होती है। दुनियाँ शीश झुकाती है।

उदासीन धर्म नीतिकी कड़ी वहाँसे जुड़ी है, जहाँसे सनकादि मुनियोंका प्रादुर्भाव होता

है। वेद, पुराण, धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थोंमें उदासीन धर्मकी बृहद् व्याख्याकी गई है।

धर्माचार्य महाप्राण जगद्गुरु श्रीचन्द्रदेव जी हमारे कुल गुरु हैं, भगवान है। उदासीन धर्म नीतिके प्रतीक है। आज जो हम नभमें श्री चन्द्रदेव जीका दर्शन पाते हैं, शीतल प्रकाश मिलता है, वह गुरु देवकी अमिट देन है, इनके पुण्य प्रतापसे उदासीन समुदाय आगे बढ़ता रहे, ज्ञानके पुंजको विखेर कर सकल विश्वको शान्ति और सद्भावनाका सन्देश देता रहे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु न कश्चित दुःखभाग भवेत्।

इन्हीं दो चार शब्दोंके साथ मैं अपने धर्माचार्य जगद्गुरु श्रीचन्द्रदेव जीके श्री चरणों में भावात्मक सुमन अर्पण करते हुए बन्दना करता हूँ। अभिनन्दन करता हूँ।

समाचार पंजीयन (केन्द्रीय) कानून १९५६ के ८वें नियम के अन्तर्गत अपेक्षित 'परमानन्द सन्देश' से सम्बन्धित विवरण

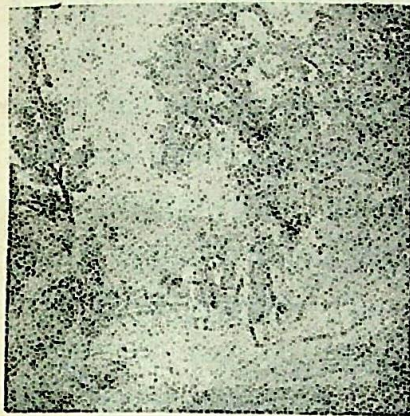
- १—प्रकाशन का स्थान.....शारदा प्रतिष्ठान सी०के० १५।५१ सुड़िया, वाराणसी,
- २—प्रकाशन अवधि.....मासिक, मास के प्रथम सप्ताह में
- ३—मुद्रक तथा प्रकाशकका नाम.....भद्रसेन वैद्य
राष्ट्रीयता.....भारतीय
पता.....सी०२२।११ कबीरचौरा, थाना-चेतगंज वाराणसी
- ४—सम्पादक का नाम.....भद्रसेन वैद्य
राष्ट्रीयता.....भारतीय
पता.....सी० २२।११ कबीरचौरा वाराणसी

५—स्वत्वाधिकारियों का नाम पता.....१-अजित मेहता ११८२।२ शिवाजी नगर पूना-५
२-भद्रसेन वैद्य सी० २०।११ कबीरचौरा वाराणसी,
मैं भद्रसेन वैद्य घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारीमें विश्वासके अनुसार उपरोक्त विवरण सही है।

ता०—२२—२—६२

हस्ताक्षर—

भद्रसेन वैद्य



भगवान श्रीचन्द्राचार्य

की

प्रियभूमि चम्बाकी यात्रा

ले०—श्री स्वामी योगिन्द्रानन्दजी, न्यायाचार्य, मीमांसातीर्थ
उदासीन संस्कृत विद्यालय—वाराणसी ।

०

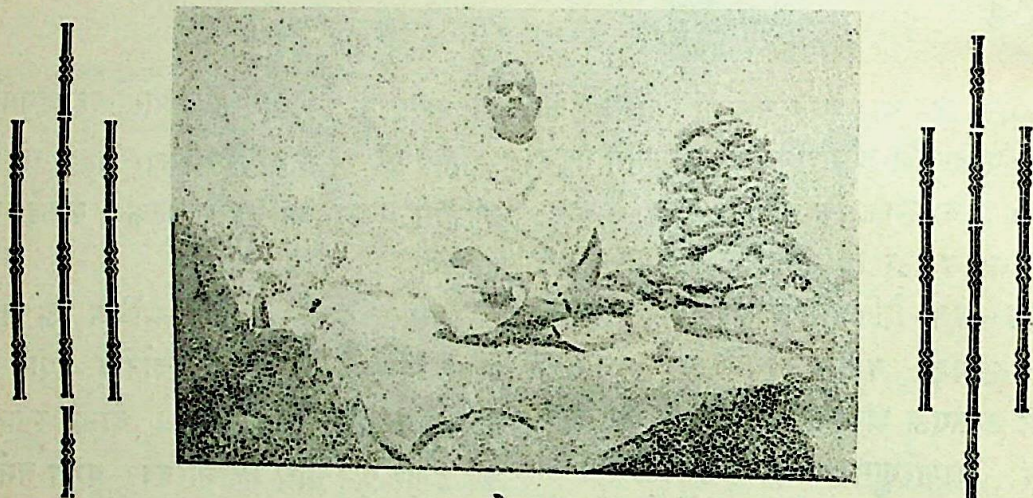
भगवान् श्री चन्द्राचार्यको चम्बा की ललित शैलावलि और सघन वनस्थलीसे बहुत प्रेम था । यहाँ तक कि संवत् १७०१ के लग-भग भगवान् उन्हींमें सदैवके लिए अन्तर्हित हो गये—इन ऐतिहासिक पक्तियोंपर जबसे मेरी दृष्टि पड़ी, तभीसे हृदयमें एक नितान्त उत्कट उत्कण्ठा अंकुरित हो उठी थी कि भगवान्की चरणरेणुसे पावन उस धराधाम का दर्शन अवश्य करना चाहिए । वर्षोंकी प्रतीक्षाके अनन्तर ६ जून १९५९ को वह सौभाग्य प्राप्त कर सका । डलहौजीसे २० मील दूर रावीके पवित्र तट पर चम्बा नगरी बसी है । सीधे पगडण्डीसे जानेपर कुछ समीप है । इसी मार्ग पर प्रातः मैं, पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी, विरक्त-वर स्वामी ब्रह्मदेवजी और श्री स्वामी सर्वज्ञ मुनिजी—चारों चल पड़े । चारों ओर अत्यन्त ऊँचे देवदारु वृक्षोंका कजली वन देखकर महा-भारतकी स्रक्तिका सहसा स्मरण हो आया—
“वनानि देवदारूणां मेघानामिव वायुरा ।”
सचमुच इनके शाखाजालमें मेघमण्डल फँसा

ही रहता है । वनावलिके पार दूर हिमाद्रिके स्वर्णिम और रजताभ हिमशिखर चमक रहे थे । हमलोग ३ मीलकी चढ़ाई चढ़कर लकड़मण्डी पहुँचे ।

सात हजार फुटसे अधिक ऊँचाईपर लकड़मण्डी है । यहाँ दो दर्शनीय स्थान हैं—कालाटोप और डाइनकुण्ड । दोनों स्थानोंसे कई हजार फुट नीचे मैदानी दृश्य बहुत मनोरम दिखाई देता है । डाइनकुण्डपर वृक्षावलि कम है । सबसे ऊँची चोटीपर चढ़े, तो देखा कि किसीने पत्थर चुनकर एक टीला-सा बना रखा है और उसके समीप ही एक कमलके पत्तेके समान मसृण और सुन्दर शिला पड़ी है । मैं उस पर बैठा, सोचने लगा कि ऐसे दिव्य स्थानों पर भगवान श्री चन्द्राचार्य अवश्य विराजते रहे होंगे । लकड़मण्डीसे खजियारकी ओर बढ़े । चढ़ाई नहीं, कुछ उतराई ही होगी । स्वच्छ जलके भरने और सान्द्र वृक्षावली पार करते चल रहे थे । कहीं-कहीं पर्याप्त प्रकाश पाकर कैमरा सीधा करता और साथियोंका फोटो

खींच लेता था। मध्यान्ह १२ बजेके लगभग खजियार पहुँचा। वहाँ देवदारुके वृक्ष बहुत ऊँचे थे। एक गोलाकार मैदानमें तालाब, तालाबके चारों ओर दारुवनी। नितान्त सजीव दृश्य था। वहाँ कुछ सुस्ताकर चम्बाका पथ अपनाया। अब मार्गकी दोनों ओर पहाड़ियोंपर सीढ़ीदार खेत दिखाई देते थे। आलू बहुत होता है, हरा मटर उन दिनों भी खूब था।

की अभिलाषा पूर्ण होनेपर अनिवर्चनीय आनन्द की अनुभूति होती है। धीरे-धीरे उतरकर रावीके तटपर पहुँचे। पुलसे नदी पार की। शहरमें पहुँचनेपर आश्चर्य और आनन्द की सीमा न रही कि यहाँका बच्चा-बच्चा भगवान् श्रीचन्द्राचार्यके नामसे सुपरिचित था। 'श्रीचन्द्रशिला' के नामसे प्रसिद्ध स्थानका मार्ग सबने बताया। चौगान मुहल्लामें वकील



लेखक

सेव, अखरोट, और खुवानियोंके बगीचे भी कहीं-कहीं मिलते थे। सायंकाल ५-६ बजेके लगभग एक ऐसे स्थानपर पहुँचा, जहाँसे कई हजार फुट नीचे मैदानमें एक छोटा-सा शहर दिखाई पड़ा। सिलेटी पत्थरसे ढाये हुए घर दूरसे बहुत ही सुन्दर लग रहे थे, जैसे शतरंज की बाजी बिछी हो। एक बड़ी नदी भी दिखाई देती थी। लोगोंने बताया—यही चम्बा नगरी है। काफी दूर नीचे थी वह, प्रकाश भी मन्द पड़ गया था, फिर भी कैमरेमें लानेका यत्न किया। धूमिल दृश्य आया। बहुत दिनों

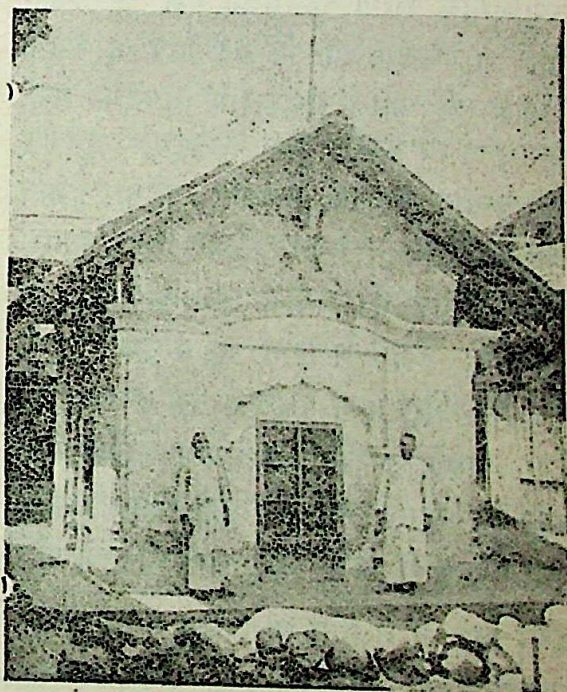
देशराजजीके मकानके समोप ही वह स्थान है। दर्शन किया। एक पक्की टेकरीके ऊपर छोटा-सा मन्दिर बना है। चारों ओर चार दरवाजे हैं, ऊपर सिलेटी पत्थर ढाया हुआ है। मन्दिर के अन्दर शिलातलपर भगवान्के चरण चिन्ह और गोडेका निशान है।

रात वकील साहबके हमलोग मेहमान रहे। बातचीतके सिलसिलेमें वकील साहबने बताया कि इधरका पहाड़ी प्रान्त योगी भर्तृनाथ और भगवान् श्रीचन्द्रके नामसे अत्यन्त परिचित है। चम्बासे ६-७ मील दूर एक स्थान

पर शिवरात्रिके दिन बहुत बड़ा मेला लगता है और दोनों योगिराजोंके स्थानोंकी खूब पूजा तथा मान-मनौती होती है। लोगोंका दृढ़ विश्वास है कि शिवरात्रिके दिन भगवान् श्रीचन्द्र अभी भी दर्शन दिया करते हैं। चम्बामें जब प्रथम बार भगवान् श्रीचन्द्र आने लगे, तब रात्रीके उस पार ही उन्हें रोक दिया गया। किसी योगीके प्रभावमें आकर चम्बा नरेशने नौकावालोंको मना कर रक्खा था कि अन्य कोई महात्मा नदीसे पार न किया जाय। वकील साहबने ही आगे बताया कि आजका युग भले ही विश्वास न करे, किन्तु यह घटना नितान्त सत्य है। भगवान् श्रीचन्द्र रात्रीके उस पार एक टेकरीपर बैठे थे। जब उन्हें नौकावालोंने अपनी विवशता सुनाई, तब भगवान्ने अपने नीचे की टेकरीको आज्ञा दी—“चल शिले ! उड़कर पार हो जा।” तुरन्त वह शिला उड़कर नदी पार चम्बा नगरीमें जा गिरी, भगवान् उसपर बैठे रहे, उनके बैठनेका चिन्ह आज भी मन्दिरके अन्दर शिलापर बना है। भगवान्के इस प्रकार नगरीमें आनेका समाचार विद्युद्गतिसे शहरमें फैल गया। उस योगीको भी परास्त होना पड़ा और चम्बा-नरेश ने आकर क्षमा माँगी। भगवान्का उसी टेकरी पर स्मारक बनवाया और उसके व्ययके लिए कई गाँव लगा दिये। इस स्थानका पुजारी पंजाबसे ही मँगाया गया था। उसीका वंश आज भी उसी रूपमें विद्यमान है। शहरमें इस स्थानपर लड़के चढ़ानेको आज भी प्रथा है। इस प्रथाके द्वारा लड़के अपने जीवनमें पूर्ण

सफल बना करते हैं। वकील साहबने बताया कि मैं स्वयं इस स्थानपर चढ़ाया हुआ हूँ। भगवान्पर मेरी अगाध श्रद्धा है। मेरी सभी कठिनाइयाँ उनकी कृपासे दूर हो जाती हैं।

खेदसे लिखना पड़ता है कि उदासीन सम्प्रदाय इतना वैभव सम्पन्न होता हुआ भी अपने इतिहास और ऐतिहासिक स्थानोंके लिए सदैव उदासीन ही रहा है। यह कदुत्य है कि यदि इतनी ठोस सामग्री किसी और सम्प्रदायके पास होती तो वह विश्वके इतिहासमें अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लेता।



‘श्रीचन्द्रशिला’ मन्दिर

यही उधेड़-बुन चम्बामें बनी रही। १-२ दिन वहाँ ठहर कर हम लोग बसके द्वारा डलहौजी लौट पड़े। बसका मार्ग नदीके किनारे-किनारे गया है। कहीं-कहीं बसका पहिया धिलकुल

मौतका भय और भजनमें निष्ठा

डॉ० हरिहरदास उदासीन, साधुबेला आश्रम, वाराणसी

०

गंगाके तीरे आचार्य भगवान् श्रीचन्द्र देव जी बैठे हुए अध्यात्म चिन्तन कर रहे थे। वहाँ पर एक आस्तिक श्रद्धालु जिसे भजन करनेकी बहुत लालसा थी, लेकिन संसारकी विविध उपाधियोंके कारण वह भजन नहीं कर सकता था, वह चाहता था कि यह सब दुनियाँके जंजाल छूटे और मैं एकाग्रतासे भजन कर सकूँ ऐसा निश्चय करता हुआ जगद्गुरु भगवान् श्री चन्द्राचार्य जीके चरणोंमें पहुँचा। हाथ जोड़कर पूछा—“भगवन कृपया यह बताइये कि मेरी मृत्यु कब होगी ? जीनेके अब कितने वर्ष बाकी हैं ?” भगवान् श्री चन्द्रजीने उससे पूछा —“ऐसा प्रश्न पूछनेका तेरा क्या उद्देश्य है ? अर्थात् तू क्या अभिप्राय रखकर ऐसा प्रश्न कर रहा है।” उसने कहा—“प्रभो ! मुझे ऐसा मालूम हो जाय कि अब जीवनके पाँच

करार परसे ही गुजरता था। उस समय अधिक भय होता था। ऐसे स्थानोंकी उपेक्षाका यह भी एक कारण है। फिर भी उदासीन सम्प्रदायके साधुओंको चम्बाकी बदरीनाथ आदि तीर्थोंके समान अवश्य यात्रा करनी चाहिए। पठानकोटसे डलहौजी होते हुए चम्बाको बसके द्वारा या पैदल जाया जा सकता है। —

वर्षही शेष रहे हैं, तो दो तीन वर्षोंमें संसारकी जंजाल समेट लूँ, अपने कन्धेसे दुनियाँका भार उतार दूँ और सबसे निवृत्त हो एकान्तमें बैठकर अन्तर्के दो वर्षोंमें भगवान्का खूब भजन करूँ।

उसकी बात सुनकर भगवान् श्रीचन्द्र देव जीने सोचा कि यह भजन करनेके लिये अपनी आयु पूछता है। इसलिए ‘शुभस्य शीघ्रं कर्तव्यं’ अर्थात् शुभकार्य बहुत जल्दी करना चाहिए। उसमें थोड़ा सा विलम्ब रखना अच्छा नहीं। ऐसा सोचकर उन्होंने उसका ललाट देखकर कहा—“भाई ! तेरी तो आयु आज रातमें समाप्त हो जाती है, इसलिए मृत्यु आज रातमें ही तेरा गला घोटने वाली है। यह सुनकर वह विश्वासी-भक्त सन्नाटेमें आ गया। वह सीधा चुपचाप अपने घर चला गया। और उसने घर वालोंसे कह दिया कि—आज मैं भोजनादि कुछ नहीं करूँगा और मैं एकान्तमें भजन करनेके लिए बैठता हूँ, कोई मुझे बुलावे नहीं, इसका खयाल रखना। ठीक तो है—जिसे फाँसीकी सजा हो जाय उसे भोजनादि कैसे रुचिकर हो सकते हैं। नहीं हो सकते। वह कमरा बन्दकर मृत्युके भयके कारण संसारसे अत्यन्त उपरत होकर एकाग्रतासे भगवान्का भजन-

कीर्तन-ध्यान करने लगा। भगवान्की आराधना में वह इतना तन्मय हो गया कि उसे पता ही नहीं लगा कि कब प्रातःकाल हो गया। उसने आश्चर्यके साथ देखा कि—मैं मरा नहीं किन्तु जीवित हूँ। सत्यवादी भगवान्का वचन झूठा कैसे हो गया।

वह नहा-धोकर शीघ्रही भगवान् श्रीचन्द्र देवजीके समीप गया। अभिवादन कर उनसे कहने लगा—“प्रभो! आपका कहना अनृत होगया।” भगवान् श्रीचन्द्रने कहा—“भाई! मैंने तो सत्यही कहा था। परन्तु तू यह बतला कि रात्रिभर क्या करता रहा? उसने कहा—भगवन् भगवच्चिन्तनके अतिरिक्त और क्या करता? क्योंकि आपने मृत्युकी भीति लगादी थी। इसके कारण समग्र रात्रि जागता रहा और भगवद्भजन करता रहा। परन्तु भगवन्! गतरात्रि भजनमें मेरी इतनी तन्मयता हो गयी थी कि मैंने अपनी इतनी जिन्दगीमें कभी ऐसी तन्मयताका अनुभव नहीं किया।” भगवान् श्रीचन्द्रदेव जीने उसके कथनका अनुवाद करते हुए कहा—“अच्छा, तू सारीरात भजन-कीर्तन ही करता रहा। देख भाई! भजनका बड़ा सामर्थ्य होता है, भजनके प्रभावसे मृत्युभी

भाग जाती है, ऐसा शास्त्रोंमें कहा है। गतरात्रि तेरे शरीरकी मृत्यु अवश्य आई होगी, परन्तु भजनकी शक्तिसे वापस लौट गई होगी। अब आगेकी रात्रिमें तू सावधान रहना और प्रेमसे एकाग्रतासे रात्रि-दिवस भगवद्भजन करते रहना। नहीं तो मौत तेरे शरीरको समाप्त कर देगी। इसलिए तू आलस्य-प्रमादका परित्याग कर मृत्युके भयसे मुक्त होनेके लिए सदा भजन कीर्तन किया करना।” वह भक्त श्रद्धालु था। उसने भगवान् श्रीचन्द्र जीके इस युक्तियुक्त कथन को ही सत्य मान लिया और संसारके आवश्यक कार्योंको करता हुआ भी मनमें वैराग्य रखकर सदा भगवद्भजन करता रहा। तात्पर्य यह है कि—वैराग्यके बिना भजनकी सिद्धि नहीं होती, और मृत्युकी भावनाके बिना वैराग्यकी सिद्धि नहीं होती, इसलिए वैराग्यकी एवं भगवद्भजनकी सिद्धिके लिए मृत्युकी भावना अवश्य करनी चाहिए। क्योंकि मृत्युकी भावनासे हमारे हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, संसारकी आसक्तियाँ दूर हो जाती हैं और भजनमें चित्त एकाग्र हो जाता है।

सबही सुख वैराग्यमें तेज तपस्या माहिं।
भक्तिसे प्रभु होत वश, मुक्ति ज्ञान बिन नाहिं

सूचना

पूना के कृपालु सज्जन जो “परमानन्द सन्देश” के नये ग्राहक बनना चाहें उन्हें निम्नलिखित स्थान से विशेषांक लेकर ग्राहक बन जाने की कृपा करनी चाहिए।
शेष अंक पोस्ट द्वारा सेवा में भेज दिया जायगा।

श्रीतीर्थ रामटेकड़ी
हड़पसर
पूना

श्री सेठ हंसराजजी ठक्कर
द्वारा-मेसर्स नरेन्द्र एच ठक्कर
रविवार सेठपूना



श्रीचन्द्र

ले०—श्री महानन्दजी
उदासीन

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।

अनुब्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

॥ भा० ११-१४-१६ ॥

किसी वस्तुकी इच्छा न रखने वाला, मननशील, शान्त स्वभाव, किसी भी प्राणिके प्रति वैरभाव न रखनेवाला तथा सभी भूत प्राणियोंमें समान दृष्टि वाले महात्माके पीछे-पीछे सदा मैं चलता हूँ और उनके चरणों द्वारा उठे हुये पवित्र धूलिसे मैं अपनेको पवित्र बनाता हूँ ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराणके साक्षात् परात्पर भगवान् श्रीकृष्णके इस वाक्यमें बहुत बड़ा रहस्य भरा हुआ है । यह समझना सर्वथा आसान नहीं कि इस विश्वके अन्दर महात्माओंका स्थान कितना ऊँचा है और क्यों है । जिसके लिये साक्षात् नारायण भगवान् श्रीकृष्ण यह कहते हैं कि मैं महात्माओंके चरण रजसे अपनेको पवित्र बनाता हूँ । मानवमें मानवत्व, दानवमें देवत्व, तथा देवताओंमें देवत्वके मूलमें महात्माओंका बहुत बड़ा हाथ है । प्रत्येक समाजके अन्दर मानवताका विकास पवित्र हृदय महात्माओंके द्वारा ही हुआ है । ईसाई समाजके अन्दर यदि महात्मा येशु आकर प्रत्येक प्राणियोंमें दयाका भाव तथा परोपकार

का प्रचार न किये होते तो योरोपके अन्दा आजकी यह सभ्यता न जाने कितनी दूर होती । इसी प्रकार महात्मा हजरत मुहम्मद, भगवान् बुद्ध, महावीर स्वामी आदि महात्माओंके द्वारा ही विशाल जन समाज सत्यका मार्ग देख सका । प्राचीन भारतकी आर्य संस्कृतिका मूल स्रोत पवित्र महात्माओंकी अनुभूति, आचरण तथा ज्ञान राशि है । सनक सनन्दन आदि आत्माराम, परम वीतराग महात्मा, व्यास-वशिष्ठ आदि महर्षि, दत्तात्रेय, शुक्रदेवादि परम वीतराग सन्तों से ही यह आर्य वैदिक संस्कृति अनुप्राणित है ।

मानव जीवनका भौतिक स्तर चाहे कितना ही समुन्नत क्यों न हो, यदि उसके साथ सांस्कृतिक नियन्त्रण न रहे तो चाहे वैयक्तिक जीवन हो अथवा सामाजिक, पतनकी ओर अवश्य प्रवृत्त होगा । संस्कृति या आध्यात्मिकता मानव जीवनके भौतिक स्तर पर सन्तुलन स्थापन करता है । वैयक्तिक अथवा सामाजिक सन्तुलन ही उसकी अपनी मजबूती है । सन्तुलन खो देने पर व्यक्ति अथवा समाज चाहे कितना ही मजबूत क्यों न हो, उसका पतन शीघ्र होता है । लगभग एक हजार वर्षोंसे भारत विजातियोंसे आक्रान्त रहा, पर आज भी उसकी संस्कृति और सभ्यता पूर्ववत् रहनेका एकमात्र कारण है समय समय पर महात्माओंका प्रगट होना । यवनोंके घोर अत्याचारके कारण भारतीय जन समाजका धार्मिक स्तर गिर रहा था, साथ साथ जन समाजमें महान अशान्ति फैल रही थी, उसी समय भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें

महात्मा लोगोंने कई शताब्दीतक इस आर्य वैदिक संस्कृतिकी रक्षा की। बंगालमें चैतन्य महाप्रभु, महाराष्ट्रमें समर्थ रामदासजी, तुकारामजी, नाम-देवजी, ज्ञानेश्वरजी आदि। उत्तर प्रदेशमें महात्मा कबीर, गोस्वामी तुलसीदासजी। दक्षिण भारतमें स्वामी शंकराचार्यसे लेकर प्रायः सभी वैष्णवाचार्य लोग हुए हैं, जिन्होंने इस वैदिक संस्कृतिकी अनेक प्रकार समयोचित आवश्यकता के अनुसार सिद्धान्तोंका निर्माण करते हुए रक्षा की। इसी सन्त परम्परामें पञ्जाब प्रान्तमें उदासीन सम्प्रदायके आचार्य श्रीचन्द्र-देवका आविर्भाव सन् १५५१ में हुआ। "शुचीनां श्रीमतां गेहे योगोभ्रष्टोऽभिजायते" इस भगवद्वाक्यके अनुसार आपके पिता तथा माता होनेका श्रेय उस समयके सुप्रसिद्ध भक्तवर नानकदेवजीको तथा परम पतिव्रता माता सुलक्षणा को प्राप्त हुआ। आपके पवित्र जीवन दर्शनके अध्ययनसे यह निस्सन्देह ज्ञात होता है कि आपका स्थान उन महात्मा कोटिमें हैं, जिनमें सनक सनन्दन आदि परम तत्त्वज्ञ, अवधूत दत्तात्रेय, परमवीतराग ऋषभदेव, तथा परमहंस शिरोमणि शुकदेवजी आदि हुए हैं। आप विभिन्न प्रान्तोंमें भ्रमण करते हुए जन समाज के अन्दर १३० वर्ष पर्यन्त अपने पवित्र आचरण, सद्गुण तथा योगसिद्धिके चमत्कारोंसे इस वैदिक संस्कृतिकी रक्षा करते हुए मानव जातिकी सेवा करते रहे।

अवतारी पुरुषोंमें साधारण पुरुषोंकी अपेक्षा बहुत कुछ अलौकिकता बचपनसे ही रहती है। भगवान् श्रीचन्द्रको संसारके त्रितापोंसे सन्तप्त

प्राणियोंको सुख शान्ति तथा परमार्थका मार्ग प्रदर्शन करना था, अतः आप बहुत शीघ्र ही व्यक्तिगत सांसारिक बन्धनोंको तोड़कर परम वीतराग योगेश्वर महात्मा अविनासी मुनिजी महाराजसे उदासीन मन्त्र में दीक्षित होकर लोक कल्याणार्थ विचरण करने लगे। चतुर्थ आश्रम में प्रवेशके अनन्तर सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त कौपीनके अतिरिक्त अन्य वस्त्रोंको आपने धारण नहीं किया। विशाल नेत्र, स्वर्ण सदृश गौर वर्ण, शरीर पर अखण्ड विभूतिका प्रलेप, विशाल ललाट पर त्रिपुण्ड तथा पिंगल जटाओं से आप साक्षात् भगवान् शिव जैसे लगते थे। महान् पुरुषोंका ज्ञान अगाध हुआ करता है, उनकी अनुभूति तथा उपदेश किसी समाज विशेषके लिये व्यक्तिगत भावना पर सीमित नहीं हुआ करता वरन् तप, ज्ञान, अनुभूति तथा उपदेश प्रत्येक मानव मात्र के लिये हुआ करता है। आप अपने आगे आनेवाले अनुयायियोंके निमित्त एक अमूल्य रत्न दे गये हैं जिसे मात्राशास्त्र कहा जाता है। वेद-वेदान्तोंका अध्ययन विवेचन, और प्रस्थान-त्रयीपर आपने समन्वयभाष्य नामक भाष्यकी रचना की है। आप अपने अनुयायियोंको सदा तप, इन्द्रियोंका संयम, विचार, ध्यान, धारणा आदिके द्वारा आत्मानुभूति करनेका ही उप-देश दिया करते थे, अतः स्वाध्याय पठन-पाठन की प्रणाली शिथिलहो जानेके कारण आपके रचित भाष्य प्रायः अनुपलब्धसे हो गए हैं।

धर्मके दो अंग हैं। एक बहिरंग और दूसरा अन्तरंग। बहिरंग जैसे स्नान, पूजापाठ, दान,

पुण्य, तप, खान-पानादिमें शुद्धि और अन्तरंग साधन हैं व्यवहारिकतामें सच्चाई, भगवच्चिन्तन, सद्बिचार, ध्यान, धारणा आदि। अन्तरंग साधनोंको प्रधानता न देकर केवल बहिरंग साधनों पर जोर देनेसे आत्मशान्ति या भगवत्प्राप्ति सम्भव नहीं। अतः आप अपने जीवनमें बहिरंग साधनोंकी अपेक्षा अन्तरंग साधनों पर विशेष बल दिया करते थे। जिसका निदर्शन हमें मात्रा शास्त्रके इन शब्दोंसे मिलता है।

ज्ञानकी गोदड़ी खिमाकी टोपी।

यतका आड़बन्ध शील लंगोटी ॥५॥”

चतुर्थाश्रमी यतिके लिये शीत आदि निवारण हेतु गोदड़ी आदिका कोई महत्व नहीं होता है। उनके सामने अज्ञानही सबसे बड़ा शीत है, जिसके निवारणके लिये ज्ञान रूपी गोदड़ीकी आवश्यकता होती है। मस्तिष्ककी रक्षाके लिये वस्त्र आदिकी टोपी केवल बाहरी शीत उष्ण आदिसे ही रक्षा कर सकती है, पर यतिके लिये सबसे महत्वपूर्ण टोपी है क्षमा, जो काम क्रोधादि रूप शत्रुओंसे सदा रक्षा करने वाली है।

क्रोधके आवेशमें आकर व्यक्ति कमर कस कर प्रतिकार बुद्धिसे शत्रुके सामने आता है, पर इस विषयमें आपका उपदेश कितना महत्वपूर्ण है, आप लिखते हैं कि यतियोंका शत्रुओं पर विजय पानेके लिए साधनरूप कमर कसना है शीतको धारण करना। “आड़बन्ध शील लंगोटी”

अकाल किन्था निराश भोली।

युक्तिका टोप गुरुमुखी बोली ॥६॥

धर्मका चोला सत्यकी सेली।

मर्याद मेखला लै गल मेली ॥७॥

ध्यानका बटुआ वृत्तका सूदान।

ब्रह्म अञ्चला लै पहिरे सुजान ॥८॥

इत्यादि महत्वपूर्ण पदोंसे युक्त छोटीसी उपदेशावली मात्रा शास्त्रके एक एक शब्द मन्त्रके रूप में है।

इन्हीं टूटे फूटे शब्दोंसे मैं परमाराध्य भगवान् आचार्य श्रीचन्द्रदेवके श्री चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ।

— ० —

—: उदासीन और साधक :—

उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ।

कुटुम्बभरणे युक्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम् ।

एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्तिकः ॥

गरुड पुराण अध्याय ५६

दो प्रकारके गृहस्थ होते हैं एक “उदासीन” और दूसरा ‘साधक’। जो गृहस्थ अपने कुटुम्ब-पालकमें ही लगा रहता है उसे साधक कहते हैं। जो तीनों ऋणोंसे उन्मृग हो भार्या और धन आदिका परित्याग कर एकाकी विचरण करता है, वह मौक्तिक-प्रयोजन ‘उदासीन’ कहलाता है।



जगद्गुरु

श्रीचन्द्राचार्य-प्रणीत

मात्राशास्त्र

आइम् कहु रे वाल ?—

किसने मुँडा किसने मुँडाया ।
 किसका भेजा नगरी आया ? ॥ १
 सद्गुरु मुँडा लेख मुँडाया ।
 गुरु का भेजा नगरी आया ॥ २
 चेतहु नगरी तारहु गाँम ।
 अलख पुरुष का सिमरहु नाम ॥ ३
 गुरु अविनाशी खेल रचाया ।
 अगम निगम का पन्थ बताया ॥ ४
 ज्ञान की गोदड़ी । ५ । खिमा की टोपी ॥ ६
 यत का आड़बन्द । ७ । शील लिंगोटी ॥ ८
 अकाल खिन्था । ९ । निराश भोली ॥ १०
 युक्ति का टोप । ११ । गुरुमुखी बोली ॥ १२
 धर्म का चोला । १३ । सत्य की सेली ॥ १४
 मर्याद मेखला लै गले मेली ॥ १५
 ध्यान का बटुवा । १६ । नृत्तका सुईदान । १७
 ब्रह्म अश्रुता लै पहिरे सुजान ॥ १८
 बहुरंगी मोरझड़ निर्लेप त्रिष्टी ॥ १९
 निर्भव जङ्गडोरा ना को द्विष्टी ॥ २०
 जाप जंगोटा । २१ । सिफत उडानी ॥ २२
 सिंगीशब्द अनाहत गुरुवाणी ॥ २३
 शर्म की मुद्रा । २४ । शिवविभूता ॥ २५

हरिमक्ति मृगानी लै पहिरे गुरुपूता ॥ २६
 सन्तोष सुत विवेक धागे ॥ २७
 अनेक टल्ली तहाँ लागे ॥ २८
 सुरति की सुई लै सद्गुरु सीवे ।
 जो राखे सो निर्मउ थीवे ॥ २९
 स्याह सफेद जरद सुखाई ।
 जो लै पहिरे सो गुरुभाई ॥ ३०
 त्रगुण चक्रमक अग्नि मथि पाई ।
 दुःख सुख धूनी देहि जलाई ॥ ३१
 संयम कपाली शोभाधारी ।
 चरण-कमल में सुगति हमारी ॥ ३२
 भाव भोजन अमृत कर पाया ।
 भला बुरा मन नहीं बसाया ॥ ३३
 पात्र विचार फरुआ बहुगुणा,
 करमंडल तूम्हा किशती घना ॥ ३४
 अमृत प्याला उदक मन दियो,
 जो पीवे सो शीतल भया ॥ ३५
 इडा में आवे पिंगला में धावे,
 सुपमन के घर सहज समावे ॥ ३६
 निराशमठ निरन्तर ध्यान ॥ ३७
 निर्मो नगरी दीपक गुरुज्ञान ॥ ३८
 स्थिर ऋद्धि । ३९ । अमर पद दण्डा ॥ ४०
 धीरज फहुड़ी । ४१ । तपकर खण्डा ॥ ४२

वशकर आसा । ४३ । समदृष्टि चौगान ।	निश्चल आसन कर विश्राम ॥ ६२
हर्ष शोक नहिं मन में आन ॥ ४४	तिलक सम्पूर्ण ॥ ६३ ॥ तर्पण यश ॥ ६४
सहज विरागी करे वैराग,	पूजा प्रेम ॥ ६५ ॥ भोग महारस ॥ ६६
माया मोहनी सकल त्याग ॥ ४५	निर्वैर सन्ध्या ॥ ६७ ॥ दर्शन छापा ॥ ६८
नाम की पाखर । १६ । पवन का घोड़ा ॥ ४७	वाद विवाद मिटावो आपा ॥ ६९
निष्करम जीन । ४८ । तत्वकर जोड़ा ॥ ४९	प्रीति पीताम्बर मन मृगछाला ७० ॥
निर्गुण ढाल । ५० । गुरुशब्द क्रमान ॥ ५१	चीत चितम्बर रुण भुण माला ७१ ॥
अकल संजोह । ५२ । प्रीति के बाण ॥ ५३	बुद्धि बधम्बर कुलह पोस्तीन,
अकल की बरछी । ५४ । गुणों की कटारी ॥ ५५	खौस खड़ावाँ इह मति लीन ॥ ७२
मन को मारि करो असवारी ॥ ५६	तोड़ा चूड़ा और जंजीर ।
विषय गढ़ तोड़ निर्भौ घर आया,	लै पहिरै साधु उदासी धीर ॥ ७३
नौबत शङ्ख नगरा बाया ॥ ५७	जटा जूट मुकुट सिर होइ,
गुरु अविनाशी सुषम वेद ॥	मुक्ताफिरे बन्धन नहिं कोइ ॥ ७४
निर्वाण विद्या अपार मेद ॥ ५८	नानक पूता श्रीचन्द्र बोले,
अखण्ड जनेऊ ॥ ५९ ॥ निर्मल धोती ॥ ६०	जुगत पछाणो तत्व विरोले ॥ ७५
सोहं जप सच माल परोती ॥ ६१	ऐसी मात्रा लै पहिरे कोय,
सिखा गुरुमन्त्र गायत्री हरिनाम,	आवागमन मिटावे सोय ॥ ७६

—: बालक श्रीचन्द्रसे प्रश्नात्तर :—

आठ वर्षीय बालक भगवान श्रीचन्द्रसे एक बार नूरुद्दीन मौलवी ने पूछा—

“हरि किसे कहते हैं ?”

“जिसे आप रहीम कहते हैं ।”

“रहीम किसे कहते हैं ?”

ईश्वर दयालु है । वह दया करना जानता है । रहीम नाम है दया का । रहीम वाला होने से वह रहीम कहलाता है । अपने भक्तों के पापों को दूर करता है इसलिये उसे हरि कहते हैं ।

पण्डित विष्णुदास वैष्णव ने बालक श्रीचन्द्रकी परीक्षा लेते हुए पूछा—

“ईश्वरको अप्रिय क्या है ?”

“कृतघ्नता और अभिमान ।”

“नरकके तीन द्वार कौन हैं ?”

“काम क्रोध और लोभ ।”

“शीघ्रातिशीघ्र समाधि लाभ किस उपायसे हो सकता है ?”

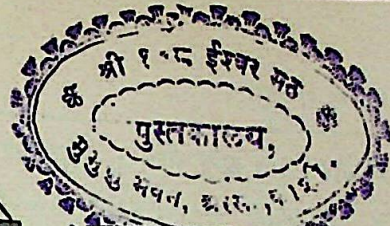
“प्रणव जाप और अर्थ-चिन्तन से ।”

“अविद्यासे मुक्त होनेके उपाय कौन-कौनसे हैं ?”

“सांसारिक विषयोंमें दोषदर्शन, साधु-सूक्तियोंका अनुशीलन, अहर्निश भगवदाराधन और स्वात्मावलोकन ।”

“वीर कौन है और ईश्वर प्राप्तिका मार्ग क्या है ?”

“वीर वही है जो काम शत्रुको जीत लेता है । सत्संगति, गुरु-सेवा और गुरुनिष्ठ मन्त्र-निरन्तर जाप-ये ईश्वर प्राप्तिके प्रधान साधन हैं ।”



सम्राट जहाँगीरको भगवान् श्रीचन्द्रके दर्शन

०

यह घटना संवत् १६६३ विक्रमी की है। काश्मीरसे भगवान पंजाबमें कादराबाद आ गये। भगवान्‌के दिव्य चमत्कारोंकी चर्चा जनकण परम्परया जहाँगीरके कानमें भी पहुँची। उसने स्वयं कादराबादमें आकर भगवान्‌के दर्शन किये। बादशाहने भगवान्‌से लाहौर चलनेकी प्रार्थना की। भगवान्‌ने इसे स्वीकार न किया।

भगवान्‌के दर्शनके अनन्तर बादशाह जहाँगीरकी श्रद्धा बढ़ती ही गई। वह लाहौरमें रहता हुआ भगवान्‌के दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित रहने लगा। अतएव उसकी आज्ञासे उसके अनुचर भगवान्‌की सेवामें आते ही रहते थे। जहाँगीर की उत्कण्ठा ज्यों ज्यों बढ़ने लगी, त्यों त्यों वह भगवान्‌को लाहौर ले आनेके लिये अपने अनुचरोंको लगातार भेजने लगा। अन्तमें बादशाहका अनन्य प्रेम देखकर भगवान् लाहौर पधारे। भगवान्‌का आगमन सुनकर जहाँगीर को अत्यन्त आनन्द हुआ। वह बड़े चावसे भगवान्‌की सुश्रूषा करने लगा। एक दिन जहाँगीरने एक खुला दरबार किया ताकि उसके राज कर्मचारी और आम जनता भगवान्‌के दर्शनों और उपदेशोंसे लाभ उठा सकें। बादशाहकी

प्रार्थना स्वीकार करके निश्चित समय भगवान्‌ने दरबारमें दर्शन दिये। उस समयपर उनके शिष्य कमलासन उनके साथ थे। भगवान्‌की आज्ञासे कमलासनने उनकी गोदड़ीको एक तरफ रख दिया। भगवान्‌को सिंहासन पर बिठलाकर जब सब लोग अपने २ स्थान पर बैठ गये तब सब सभासदों और बादशाहकी दृष्टि उस कन्थाकी ओर गई। उस समय वह तरह-तरहकी चेष्टाएँ कर रही थी। वह कभी काँपती थी, कभी संकुचित हो जाती थी और कभी फैल जाती थी। कभी पृथ्वीसे ऊपर उठती थी और कभी नीचे गिर पड़ती थी। दर्शकोंको यह अम हो रहा था कि कोई जन्तु इसमें व्याकुल और दुःखी हो रहा है। दरबारने इसका रहस्य समझनेकी इच्छा भगवान्‌के आगे प्रकट की। भगवान्‌ने कहा कि महात्माओंकी हाल त्रिचित्र होती है। संसारी मनुष्योंको उसका पता लगानेसे विशेष लाभ नहीं। उनका परम कर्तव्य तो यही है कि वे उनकी सेवासे लाभ उठाएँ। जहाँगीरने पुनः हाथ जोड़कर पूछा—“महाराज कन्थामें आपने क्या छोड़ रक्खा है? यह बतानेका अनुग्रह अवश्य करें। ताकि हमारा कौतूहल दूर हो।”

भगवान्‌ने कन्थास्थ ज्वरसे कहा—“भाई जरा बाहर आकर बादशाहको अपना परिचय दो” ज्वरने कन्थासे निकलकर बादशाहको पकड़ लिया। उसके नेत्र लाल हो गये, शरीर काँपने

लगा और मुख सूख गया। बादशाहने दुःखी होकर भगवान्से यह प्रार्थना की—“महाराज मुझे इससे छुड़ाइये, अन्यथा यह मेरे प्राण लिये बिना न छोड़ेगा।”

भगवान्ने कहा—“हमने इसी लिये आपको रोका था। सभामें आनेसे पूर्व हमें ज्वर आने वाला था। ज्वर आ जानेसे वार्तालापमें गड़बड़ मच जाने का भय था। एतदर्थ हमने इसको कुछ समयके लिये इस कन्थामें रख दिया था। यहाँसे जाकर हम इसे सम्भाल लेंगे। ज्योंही भगवान्ने ज्वरको बादशाहको छोड़ देनेकी आज्ञा दी, उसी समय जहाँगीर पूर्ववत् स्वस्थ हो गए।

तदनन्तर बादशाह और भगवान्के परस्पर ये प्रश्नोत्तर हुये।

जहाँगीर—“आपने गार्हस्थ्य क्यों नहीं किया?”

भगवान्—“प्रजातन्त्रकी वृद्धिके लिये गार्हस्थ्य मनुष्यके लिये किसी अंश तक ठीक है, परन्तु यह उसका वास्तविक लक्ष्य नहीं है।” विषय वासना पूर्ति तो यह जीव अन्य पशु पक्षी आदिकोंके जन्ममें करता आया है, मनुष्य जन्मकी सफलता तो केवल इसीमें है कि मनुष्य मायिक विषय जालसे विरक्त होकर परमात्मा की प्राप्ति का यत्न करे। आपही वतलायें आपने सांसारिक विषयोंसे क्या लाभ उठाया है?”

जहाँगीर—“हिंदू श्रेष्ठ है, या मुसलमान?”

भगवान्—“जिसमें भूतदया है; श्रेष्ठ है।”

जहाँगीर—“परमात्मा कहाँ है। दिखाई क्यों नहीं देता?”

भगवान्—“वह सर्वव्यापक है। स्थान विशेष परिच्छिन्न वस्तुको ही निर्दिष्ट किया जा सकता है। क्या कोई आकाशका विशेष स्थान

बतला सकता है? चक्षुरादि इन्द्रियाँ नश्वर पदार्थों को ही देख सकती हैं। परमात्माके दर्शनार्थ दिव्य चक्षुओंकी आवश्यकता रहती है।”

बादशाह—दिव्य चक्षुओंकी प्राप्ति कैसे होती है?

भगवान्—“परमात्माकी अनन्य भक्ति से।”

वा०—“भक्तिका उदय कैसे होता है?”

भ०—“साधु सत्सङ्गति से।”

वा०—“साधु किसे कहते हैं?”

भ०—“जिसे ईश्वरके अतिरिक्त और किसी की परवाह न हो।”

वा०—“फिर आप गृहस्थोंके यहाँ क्यों जाते हैं?”

भ०—“तेरे जैसे पागलोंकी चिकित्सा के लिये जाता हूँ।”

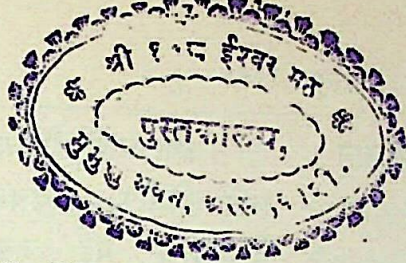
वा०—“यदि किसीका चिकित्सा करानेका विचार न हो?”

भ०—“फिर वलपूर्वक करेंगे। क्या पागल की चिकित्सा पूछकर की जाती है?”

भगवान्के इन अपूर्व निर्भिकतापूर्ण उत्तरों से बादशाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अतएव वह भगवान्की प्रशंसा करने लगा। बादशाहने कहा—“महाराज! आप धन्य हैं! आपने सांसारिक वैभवों पर लात मार दी है।”

भगवान्ने कहा “नहीं, आप हमारेसे अधिक धन्यवादके पात्र हैं, क्योंकि आपने सांसारिक विषयोंमें फँसकर परलोकको लात मार दी है। जो इस संसारके वैभवोंसे कहीं बढ़ चढ़कर है।”

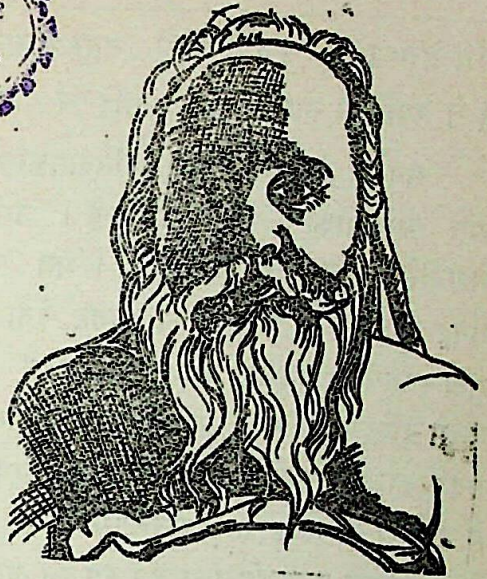
कुछ दिन बाद भगवान्ने लाहौरसे प्रस्थान करना चाहा, बादशाहने अपरिमिति धन भेंट किया। भगवान्ने इसे स्वीकार न करके लाहौर से प्रस्थान कर दिया।



सन्त वाणी

सद्गुरु बाबा शारदाराम
मुनिजी महाराजका

प्रवचन



ॐ ब्रह्मको सिरनाय के, आत्म करो विचार ।
सदा सचहिं ॐ स्तुति कर रहे वेद पुकार ॥

भाइयो, बहनो, सज्जनों आज शिवरात्रि है । बारह महीनामें एक महीना होलीका आता है । इस महीनामें हर तरफ हर्ष रहता है, प्रेम रहता है । शिवरात्रि ये दो शब्दसे मिलकर बना है । शिव और रात्रि, शिव कहनेसे शिवजी । अर्थात् जो सुखस्वरूप अविनाशी, नित्य हैं वह शिव हैं । रात्रि यह भ्रममें डालनेवाली है । रात्रिके समय मकानको ठीक तरहसे नहीं देख सकते । जो देखते हैं, रोशनी की सहायतासे देख सकते हैं । रात्रि भ्रममें डालती है । रात्रि यह त्रिगुणी माया है ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ गी० अ ७ लो १४ ॥

भगवान् कहते हैं हमारी माया अति दुस्तर है इससे पार होना, इससे छूटना अति कठिन है । देवता लोग भी इसके सतोगुणमें

फँसे हुए हैं । कई रूपमें रात्रि है, यह अज्ञानमें डालती है । मायाके छे नाम हैं उनमेंसे एक अविद्या है । अविद्याका नाम रात्रि है ।

ईश्वर हैं वह शिव है, उसने ही मायाकी उत्पत्ति की है । ईश्वर आप लीला रचकर आप ही सब खेल रचता है । ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिसे वही खेल रहा है । गुरु गोविन्द सिंह कहते हैं—

कतहूँ सचेत होके चेतनाको चार कियो,
कतहूँ अचेत होके सोवत अचेत हो ॥
कतहूँ भिखारी होके माँगत फिरत मीख,
कहूँ महादाता होके माँगा दान देत हो ॥
कतहूँ सिपाही होके साधत सलाहन को ।
कहूँ क्षत्रिय होके भारत मरत हो ॥

वह ब्रह्म ही प्रत्येक स्वरूपमें मग्न है । ब्रह्म हमारेसे भिन्न नहीं है । भक्त लोग अपने में और परमात्मामें भेद नहीं देखते । गन्नेके ऊपर पत्तियाँ रहती हैं, उनको हटा देनेसे गन्ना साबित ही दीखता है, शरीर भी पत्ती है ।

पाँच तत्त्वों को तन रच्यो जानो चतुर सुजान ।
जे ते उपजियो नानका लीन ताहि मैं मान ॥

सबके हृदयमें ब्रह्म निवासकरता है और इन्द्रियोंको सतह देता है। उसीकी रोशनीसे हम दूर तक देखते हैं। मन पहले सतह लेकर सब इन्द्रियों को सतह देता है। सुख-स्वरूपसे मनको सतह मिलता है और मनसे इन्द्रियोंको सतह मिलता है तथा इन्द्रियाँ सब प्रकारका व्यवहार करती हैं। ब्रह्म एक ही है व कहीं अचेत होकर स्वस्वरूपसे दूर हो गया है। जैसेदूधमें पानी मिलकर दूध रूप बन जाता है। जीवात्मा ब्रह्मका स्वरूप है। जीव ब्रह्मसे अलग नहीं वह ब्रह्मका ही अंश है। कोई एक धनी है। वह अगर भित्ताके लिए हाथ उठावे तो लोग उस पर हँसते हैं। हमारी जीवात्मा सुख-स्वरूप है परन्तु हमने विषय सुखके लिए हाथ पसारे हैं। इसका नाम भीख है। उसमें जीवात्मा लगा है अतएव वह भिखारी है। माँगा दान एक शरीर तक सुख देता है, परन्तु ब्रह्मज्ञान एक ऐसा दान है जो हमेशाके लिए मुक्त कर देता है। सिपाही लोग अपने बलको बढ़ाते रहते हैं उसी प्रकार भक्त लोग विवेक वैराग्यको बढ़ाते रहते हैं। अन्तमें क्षत्रियका नाम लिये हैं, ब्राह्मण का नाम नहीं लिए परन्तु कई ब्राह्मण भी वीर हुए हैं, शुद्र जातिके भी शूरवीर होते हैं। क्षत्रियोंमें हजारमेंसे सौ पच्चास कायर होते हैं तो ब्राह्मण, शुद्र आदिमें सौ पच्चास वीर होंगे। यहाँपर क्षत्रिय कौन है? व्यासजी कहते हैं जिमने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है वही शूरवीर है।

कथा चली थी शिवरात्रि की। शिव और रात्रि दोनोंका विवेचन किया। रात्रि नाम है माया। यह जड़ है। यदि कोई मायाधारी पुरुष होवे तो उसे ब्रह्मज्ञान नहीं होगा। नामधारीको ब्रह्मज्ञान होगा। जो 'नाम' की तलाश करेगा वह ब्रह्मज्ञानी होगा। राजा जनक अज्ञातशत्रु इन्होंने मायाधारी होते हुए भी 'नाम' की तलाश किया। यदि तलाश नहीं किया तो ब्रह्म ज्ञान नहीं होगा।

आजके दिन भगवानने संकल्प किया था कि 'एकोऽहं बहु स्यामः' मैं एक हूँ अनेक रूप धारण करूँ। इसी संकल्पका नाम ही माया है। आजके दिन भगवानने यह इच्छा किया था। इच्छा करनेसे भक्त लोग बन्धनमें पड़ जाते हैं।

यह इच्छा ही माया है। माया कोई दूसरी चीज नहीं है। जिस प्रकार इंसानका बल, बुद्धि, प्राण सब शरीरके अन्दर है उसी प्रकार ब्रह्मके अन्दर ही माया है। आजके दिन भगवानने संकल्प किया था, सुखरूप ब्रह्मका, और मायाका जोड़ हुआ था, चेतनका और जड़का जोड़ हुआ था इसलिए शिवरात्रि कहते हैं।

शिवरात्रिका एक और भी अर्थ है। जब देवताओं और दानवोंमें युद्ध होने लगा तब भगवानने दोनोंको उपदेश किये कि समुद्रमें बहुत रत्न भरा हुआ है। यदि दोनों मिलकर प्रयत्न करो तो प्राप्त हो सकते हैं। दोनों दुश्मन एकमत हो गए, तब भगवानने कच्छपका रूप धारण किये, उसपर मेरुपर्वत रखकर शेषनागसे समुद्रको मथा गया। कच्छप नाम प्रभूका

आधार है, ज्ञानरूपी मेरुपर्वत है। शेषनाग जो है वह शरीरके अन्दर मन है वह विषसे भरा है। सदा विषयमें पड़ा रहता है। इस साँपको तोड़ देनेसे विष जाता रहता है।

ग्रंथ साहबमें आया है कि हे मनुष्य तू आत्मा स्वरूप है। मनुष्य आत्मज्ञानको भूल जा रहा है। भगवान् गीतामें कहते हैं कि मन ही (अपना) शत्रु है तथा मन ही मित्र है। भगवद् प्राप्तिके लिए जब सत्का, संतोषका, त्रिवेकका, त्रिचारका निवास होता है तब मित्र कहलाता है, जब मनमें छल, कपट, ठगी आदि का निवास होता है तब वह शत्रु होता है। नरक देता है। आत्मा मुक्तिदाता भी है और दुश्मन भी है। जब भक्तिरूपी सागरमें मथेंगे तब अमृत प्रकट होगा।

जब समुद्र मँथा गया तब उसमेंसे मंदिरा, ऐरावत, अश्व, रत्न, औषधि, अमृतके साथ-साथ गरल (विष) भी निकला। इस गरलके तापसे सब जीव घबड़ा गए। देवता दानव भी घबड़ा गए। तब भगवानने शिवजीसे गरल पीने की विनती की है, शिवजी पी लिए हैं। सबने शिवजीकी पूजा किया है। इसलिये इसे शिव-रात्रि कहा जाता है।

शिवरात्रिका दो अर्थ बताया गया। मूरख हो या दानी हो, बालक हो या वृद्ध हो सब हाथ जोड़कर प्रेमसे नमस्कार करते हैं। सभी शिव मन्दिरमें सोलह प्रकारसे शिवजीका पूजन किया जाता है। शिवजीकी आरती की जाती है। अपने मस्तकके अन्दर भी शिवरूप आत्मा बुद्धिरूपी पार्वतीसे नित्य ही पूजित है।

लोकमें दो प्रकारके भक्त हैं। एक निर्गुण और एक सगुण, कोई शिवको भजते हैं कोई विष्णुको। कोई भक्त निर्गुण को भजते हैं कोई सगुण को भजते हैं। इन दोनोंका आपसमें विवाद चलता रहता है। ये विवाद अज्ञानवश होता है। ज्ञान हो जानेसे सबको एकही रूपमें देखेंगे। संकल्प विकल्प ये सब अज्ञान है।

जिसका गुरु जिसको जैसा उपदेश देवे, जो नाम देवे उसी नामको जपे। एक छोटा-सा दृष्टान्त है—एक आदमी साधुकी सेवा किया करता था। उसने साधुसे कहा कि हमको उपदेश करो, भगवानसे मिलनेका राह बताओ। साधुने देखा कि अब यह ठीकसे नाम जपेगा, तब उसको उपदेश किए कि भक्त तुम गोपाल नामसे भगवानको याद किया करो। गो का अर्थ है पृथ्वी, इन्द्रियाँ भी गो कहलाती हैं, पाल याने पालक। गोपाल विष्णु भी हैं और विष्णुरूपी आत्मा भी।

भक्त अपने घर चला आया और गोपाल नामसे भगवानका भजन करने लगा, मर्यादासे रहने लगा। ऐसे भजन करते-करते वह गोपाल नामको भूलकर 'ढापाल' को याद करने लगा। 'ढापाल' पर ही उसका निश्चय बैठ गया। ढापाल नामको याद करते-करते ही उसकी समाधि लगने लगी। एक दिन वह जंगल में गया था कि वहीं पर उसकी समाधि लग गई। बैकुण्ठ लोकमें विष्णुजी लक्ष्मी लग गई। बैकुण्ठ लोकमें विष्णुजी लक्ष्मी मातासे बोले—“चलिए आज आपको एक नया भक्त दिखलाते हैं।” लक्ष्मीजी बोली—“आपके तो हमेशा भक्त होते ही रहते हैं फिर

यह नया भक्त कौन है?" विष्णुजी बोले—“यह भक्त हमें उस नामसे याद करता है” जिस नाम से हमें और कोई याद नहीं करता। दोनों उस जंगलमें आए और विष्णुजी पेड़के पीछे छुप गए। लक्ष्मीजी उस समाधिस्थ भक्तके पास आकर बोलीं—“हे भक्तराज! आप किमका चिन्तन कर रहे हैं?” उसने आँखें मूँदे ही उत्तर दिया—“आपकें खसमका जो उस पेड़के पीछे खड़ा है।” यह सुनकर लक्ष्मीजी लज्जित हो गईं। तब विष्णुजीने उस भक्त को दर्शन दिए और अपने साथ विमानमें बैठकर बैकुण्ठ लोक ले गए।

प्रभुके अनन्त नाम हैं। सज्जन पुरुष इस बारेमें आपसमें विरोध न करें। केवल नाम जपें, चाहे किसी का भी।

आगे वर्णन आता है—यह जो सनातन धर्म है यह ऋषियों मुनियों द्वारा चलाया गया है। हम सब ऋषि-मुनियोंको सन्तान कहलाते हैं। हम कई प्रकारके लोग हैं। सबके आचार्य साधू हैं। अंग्रेजोंमें इसामसीह मुमलमानोंमें मोहम्मद आदि हुए हैं। सब सन्तान महात्माओंके हैं। इस विश्वमें प्रभुका नाम सनातन है। जो सदा नित्य कायम है वह सत्, चित्त, आनन्द है, सुखस्वरूप है, अखण्ड है इस प्रकार वेदान्ती लिखते हैं। जो नाश रहित है, चेतन है, दुःख रहित है वह केवल एक है। हम सब एक ही हैं, परन्तु कब? ज्ञान हो जाने पर। हमारे अन्दर एक ही ईश्वर है। वह अनेक कार्य करता है। ऐसा गुरु अपने शिष्यको उपदेश करता है।

‘परमानन्द स्वरूप तू, नहीं तोंमें दुःख लेस।’ लेस कहनेसे समुद्रका जो पानी है उसका एक बूँद समुद्रका लेस है। परन्तु तुझमें दुःखका एक लेस भी नहीं है। तू अजय है, अविनाशी है, ब्रह्मविद् है ऐसा गुरु अपने शिष्यको उपदेश करता है।

जिसका जन्म है उसीका मरण है। सबका आत्मा ब्रह्म स्वरूप है। केवल अज्ञान वश संकल्प, विकल्प होता है। एक दृष्टान्त आता है। एक आदमी था। उसके हाथमें एक सोने की छड़ी थी जिसके कारण वह नदीमें तैर नहीं सकता था। दूसरा एक आदमी किनारे पर खड़ा यह देख रहा था। उसने उस आदमीसे कहा कि इस छड़ीके लालचसे तुम भी डूब जाओगे। उसे छोड़ दो तो बच जाओगे। उसमें स्मृति जाग उठी। उसने छड़ी छोड़ दिया और आप पार हो गया। हम इस संसार को सोनेकी छड़ी मान बैठे हैं। यदि इसे छोड़ दें तो बच जावेंगे।

वेदान्ती लोग, ज्ञानी लोग ब्रह्म को, धर्मको जीवोंके कल्याणके वास्ते भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन करते हैं। नदिया एक घाट बहुतेरेके अनुसार एक ही ब्रह्मके अनन्त नाम हैं। किसी भी नामसे याद कर सकते हैं। भगवद् अनुरागी किसी भी नामको जपता है। एक बात ध्यान देने की है कोई किसी भी नामसे जपे किसी भी रूपमें भजे सर्गुणमें या निगुणमें उसकी श्रद्धामें विघ्न नहीं डालना चाहिए।

लेखक:—श्री रघुवंशदासजी उदासीन

संसारमें प्राचीन ऋषिमुनियोंसे लेकर आज तकके समस्त ऋषि, मुनि, साधु समाजका मुख्य चार विभाग—उदासीन, वैरागी, सन्यासी, नाथके सम्प्रदाय रूपसे विख्यात हैं। इन्हीं चारों सम्प्रदायके अन्तर्गत देशके समस्त साधु समाज हैं। इनमेंसे उदासीन सम्प्रदायके अन्तर्गत निरंकारी दादू पन्थी, सुथरेसाह सम्मिलित हैं। उदासीनोंकी चर्चा गीता रामायण आदि शास्त्रोंमें सर्वत्र प्रत्यक्ष हैं। यथा—गीता अध्याय ९ श्लोक ९ ॥ “न च मां तानि कर्माणि निवध्नन्ति धनंजय। उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥” गीता अध्याय १२ श्लोक १६ “अनपेक्षः शुचिर्दत्त उदासीनो गतव्यथः। सर्वारम्भपरित्यागी यो भद्रभक्तः स मे प्रियः ॥” गीता अध्याय १४ श्लोक २३ “उदामीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते। गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥” तथा रामायणमें हिमाचलके यहाँ पार्वतीजीकी माताजी भगवान् शंकरको उदासीन सम्बोधित करते हुए कहती हैं “साचहु उनके मोह न माया। उदासीन धन धाम न जाया ॥” कैंकेईने भगवान् रामजीके प्रति तपस्याके लिए उदासीन भेषमें ही बन जानेका वरदान लेकर आज्ञा दी है। “तापस भेष विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम बनवासी ॥” प्रयाग में श्री भरद्वाज मुनिजी भी भरतजीसे कहते हैं— “सुनहु भरत हम भूठ न कहहीं। उदासीन

तापस बन रहही ॥” आगे चलकर मुनि लोभा फिर भगवान् श्री रामजीके प्रति कहते हैं। “पिता वचन तजि राज उदासी। दण्डक बन विचरत अविनासी ॥” अन्य ग्रन्थोंमें भी अनेकों प्रमाण उदामीन मुनियोंके मिलते हैं। वर्तमान युगमें श्री गुरु नानकदेवजीका भी अनेकों प्रमाण उनकी जन्म साखी ग्रन्थ साहब आदिमें मिलता है जैसे—“गुरुमुख खोजत भयो उदासी” तथा “गुरु वचनी बाहर घर एको, नानक भया उदासी।” आदि आदि अनेकों प्रमाण उनके उदासीन भेषको सूचित करते हैं।

सबे प्रथम सृष्टिके आदिमें श्री विष्णु भगवान् जी उदासीन रूप हंसावतारमें प्रगट होकर मुनि सनक सनन्दन सनानन कुमार जीको उदासीन सम्प्रदायकी दीक्षा देकर उन्हें अजर अमर जीवन मुक्त तथा उदामीन सम्प्रदायके आदि आचार्यके पदपर प्रतिष्ठित किये और निरंकार ब्रह्म तथा लौकिक रूपसे पंचदेवके उपासनाकी आज्ञा दिए। आज भी उदासीन सम्प्रदायके प्रत्येक साधु (मुनियों)से पूछने पर वे अपना उपास्य देव पंचदेव तथा निरंकार ब्रह्म और आदि आचार्य भगवान् सनक सनन्दन आदि मुनियोंको ही बतलायेंगे। उदासीन मुनियोंकी परम्परा भगवान् सनत कुमारसे चलती है। आपने श्री नारदमुनि जीको उदासीन दीक्षा दिये। इसके आगे वाग्भ्यमुनिजी, दालभ्य

मुनिजी, कपिलमुनिजी, जयमुनिजी संजीवन देवजीसे लेकर च्यवन मुनिजी, प्रभाकरदेवजी आदि-आदि अनेकों ऋषि-मुनि इस सम्प्रदाय में सतयुग, त्रेता, द्वापर युगमें होते आये हैं। श्रौतमुनि चरितामृत, श्री चन्द्र दिगविजय आदि ग्रन्थोंमें अनेकों उदासीन मुनियोंके प्रमाण प्रत्यक्ष है।

वर्तमान युगमें भी अभी तक समस्त उदासीन सम्प्रदायके ऋषि-मुनि, गुरुजन अपने शिष्योंको दीक्षा देकर सम्प्रदाय नामकरण संस्कार मुनि, प्रकाश, देव, नन्द, दास, राम, भगवान, चन्द, साहब आदि विशेषणसे ही करते हैं। वर्तमान उदासीन मुनियोंके नामसे भी यह प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है कि उपयुक्त ऋषि-मुनि उदासीन संप्रदाय भेषमें ही दीक्षा ग्रहणकर प्रभु परायण हुये हैं। अन्य सम्प्रदाय समाजके नाममें वर्तमान समय कहीं इतने विशेषण नहीं मिलते हैं। कलयुग प्रारंभ के बाद उदासीन मुनियोंका संक्षिप्त परिचय—लोकप्रिय मुनि, निरंकुश मुनि, चित्रकेतु मुनि, भास्करदेव, लक्ष्मीदेवजी, हरिमुनिजी, विसपण देवजी, नहुषमुनिजी, विश्वानन्दजी, सुयशप्रभु जी, रामरति रामजी, अतीतमुनिजी, श्रीवेदप्रकाश मुनिजी, सन्तरेण मुनिजी, ऋषिराज गुरुनानक देवजी, श्री अविनाशीरामजी, भगवान श्रीचन्द्राचार्यजी।

आजसे करीब ५०० वर्ष प्रथम भगवान श्री चन्द्राचार्यजीका प्रादुर्भाव पंजाब प्रान्तमें उदासीन महाशुनि ऋषिराज श्री गुरुनानकदेवजीके यहां ज्येष्ठ सुपुत्रके रूपमें हुआ। आपके जीवनकी

अद्भुत घटनायें अलौकिक चमत्कारपूर्ण हैं। शंकरावतारके रूपमें जटा-जूट मुन्द्रा सेखी भस्म-रचित ही आपने जन्म धारण किया। इसका इतिहास गुरुनानकदेव जन्म साखी, भगवान श्री चन्द्र-जीवनी, श्रौत मुनि चरितामृत आदि ग्रंथोंमें विस्तारपूर्ण है। उदासीन समाजके महात्मागण नित्य प्रति अपने आरती-पूजनकी स्तुतिमें गाते रहते हैं—'विष्णु रूप नानकगुरु, शिवस्वरूप श्री चन्द। एक रूपकर जो भजै, रहै परम आनन्द।' श्री चन्द्रदेव शिवमद्वतीय, भस्मावलिप्त शशि शुभ्रवर्णम्। पद्मासनस्थ सुखदं यतिन्द्रम्, वाकाय चित्तै सततं भजेहं।"

आप बाल्यावस्थामें ही अपना अद्भुत अलौकिक चमत्कार संसारमें प्रकट करना आरम्भ कर दिधे। ११ वर्षकी आयुसे ही सदा बाल्यरूपमें यति योगी निर्वाण भेषमें इस भू-मंडलपर विचरण करते रहे। देशके कोने-कोनेमें अत्याचारका दमन करते हुए समस्त देशमें आपने धर्मकी जय, जागृति उत्पन्न की तथा पुनः उदासीनाचार्यका पद प्राप्तकर समस्त उदासीन समाज एवं भक्तजनोंको अमरत्व दान देकर कृतार्थ किये। आपके अनन्य विरक्त शिष्यगण भी आपसे उदासीन मार्गकी दीक्षा लेकर परम्परा प्रवाहित किए और आपकी आज्ञानुसार समस्त देशके कोने-कोनेमें धर्मोपदेश, यज्ञ, जप, तप, दान, आदि शुभ कर्मों द्वारा संसारका कल्याण करने लगे। आपकी विभूति रूप अब भी इस समाज में अनेकों मुनि, महात्मा, धुरंधर विद्वान, निर्वाण मंडलेश्वर, महामंडलेश्वर आदि महापुरुष देशके

कोने-कोनेमें धर्मकी जागृति धर्मोपदेश करते अपने योग मार्गमें अग्रसर हैं और आपके असीम कृपा आशीर्वादसे सृष्टि-पर्यन्त अपने शुभ मार्गमें अग्रसर रहेंगे। आचार्यदेव आप इस भारत-भूमिपर १५१ वर्षतक धर्मोपदेश द्वारा लोकका कल्याण और धर्मका विजय डंका बजाकर पंजाब प्रान्त अन्तर्गत रियासत चम्बामें नदीके तट पर एक शिला पर विराजमान हो योग समाधि लगा अनन्य भक्त गणों के देखते-देखते शिलाको जलमें तराय, पार जाकर अन्तर्ध्यान हो गये और इस संप्रदाय तथा नामयज्ञ को अमर कर गये।

आगे आपकी परंपराके शिष्यगण श्री भगत भगवानजी, श्री गुरुदित्ताजी, श्री बालूदसनाजी, श्री फूलसाहबजी श्रीअल-मस्त साहब जी, श्री गोविन्दसाहबजी आदि इनकी अनेकों शाखायें संसारमें प्रचलित हैं। श्री गुरुवनखण्डी साहब जी, श्री निर्वाण प्रीतम देवजी, श्री टीकारामजी, श्रीतुलारामजी, श्रीरामरायजी, श्री बाबा वसाऊदास जी, श्री पंजाबदासजी, श्री मियासाहब जी, श्री ठाकुर दास जी, श्री बाबा हजार साहबजी, श्री बाबा माधोरामजी, श्री नारायण रामजी आदि आदि आप लोगों की परम्परा शाखामें संसार के कोने कोने में अनन्तसिद्ध महापुरुष हुए और अब भी देशमें हर जगह विराजमान हैं जो कि जनता को धर्मोपदेश देकर जगह जगह मन्दिर, मठ, विद्यालय, औपधालय, आश्रम आदि धर्मकी स्थापना करके संसारका कल्याण करनेमें तत्पर हैं। यहाँपर लेखक आचार्य भगवान् श्रीचन्द्र

जीसे आजतककी अपनी परंपरा उद्धृत कर रहा है। भगवान् श्रीचन्द्राचार्यजी, श्रीभगत भगवानजी, सर्वश्री टीकाराम, तुलारामजी, हर मकरन्दजी, फतेचन्दजी, धन्नूगामजी, सहजरामजी, संगतवक्स साहबजी, माधोरामजी, शुद्धराम जी, बाबा मौजीरामजी, सद्गुरु बाबा शारदा रामजी।

अखाड़ोंका संक्षिप्त परिचय—ऐसे तो सर्व साधु समाजमें विभिन्न रूपसे सबके ऋषि-मुनि मठ-आश्रम, अखाड़े आदि समस्त भारतमें हैं। परन्तु इस उदासीन संप्रदायमें सामूहिक दो अखाड़े एक उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ा, दूसरा उदासीन पंचायती नया (छोटा) अखाड़ाके नामसे प्रसिद्ध है। इन दोनों अखाड़ों के अन्तर्गत समस्त उदासीन समाज हैं। जिसे (श्री पंचपरमेश्वर) अथवा एक पंचायती कमेटी के रूपमें इस संस्थाका केन्द्र माना जाता है। जिसके मेम्बर अधिकारी इस उदासीन सम्प्रदाय के प्रत्येक महानुभाव जो अखाड़ेके अन्तर्गत होते हैं उन्हींमेंसे निश्चितकर पदाधिकारी बनते हैं और समाजकी सेवामें हर प्रकारसे तत्पर रहते हैं। इस संस्थाके संचालक आजसे करीब ४०० वर्ष पहले श्रीमान् पूज्य उदासीन मुनि निर्वाण प्रीतमदेवजी हुये हैं। उनकी ही विभूति, कृपा आशीर्वादसे यह संस्था उदासीन पंचायती बड़ा अखाड़ाकी जमात समस्त भारतमें अपने हाथी घोड़ा अन्य वाहन से सुसज्जित हो सहस्रों मुनियों की संख्यामें देशके कोने-कोनेमें अथवा भारतके समस्त उदासीन आश्रमों तीर्थों आदिमें हरएक बारह वर्ष

पश्चात् पदयात्रा भ्रमण करते हुए अपने धर्मो-
पदेश द्वारा जनताका कल्याण, धर्मकी संस्थापना
और सर्व उदासीनाश्रमों को अपनी सम्मति और
उत्साह देकर अग्रसर करने में तत्पर रहते हैं।
इस संस्था (पंचायती बड़े अखाड़े) के तरफसे
भी भारत के समस्त तीर्थ स्थानोंमें विशालसे
विशाल आश्रम, मठ, विद्यालय आदि बने हुए
हैं। चारों कुम्भ मेलोंमें आनेवाले समाजके
अनेक ऋषि मुनि, महात्मा तथा भक्तगणोंका पूर्ण
वन्दोवस्त ठहरने का तथा लकड़ी भोजन पानी
आदिका इन पंचायतोंमें बड़े अखाड़ेके तरफसे
रहता है। इन अखाड़ोंके उच्च अधिकारी महा-
पुरुष आनेवाले कुम्भके साल-दो साल प्रथमसे

ही पूर्ण व्यवस्था कुम्भ मेलेमें आनेवाले सन्त
महन्त आदि भक्तगणोंका तैयार रखते हैं तथा
अपनी सांप्रदायिक धर्मध्वजा लगाकर पूर्ण विशाल
रूपसे सर्वप्रकारसे अतिथि सत्कार मेलाभर
एक, डेढ़ माहतक प्रेम पूर्वक करते हैं और
सम्प्रदायिक शाही जुलुस यात्रा, स्नान आदि
का पूर्ण प्रबन्ध इस अखाड़ेके सदस्य महा-
नुभाव ही करते हैं। आगामा आनेवाले हरिद्वार
कुम्भ मेलेमें मेला जखीरा प्रबन्धक उदासीन
पंचायती बड़े अखाड़ेके मुख्य चार महन्तोंमेंसे
श्रीमान् १०८ महन्त श्रीप्रकाश मुनिजी महा-
राज हैं।

—०—

श्रीतीर्थरामटेकड़ी पूनामें

पाँच दिवसीय विशाल यज्ञ, जप, पाठ एवं नाम संकीर्तन

सेवक मण्डल द्वारा सकुशल सुसम्पन्न

०

पूनासे श्री रघुवंशदास उदासीन जीने
स्वचित किया है कि अष्टग्रही संकट निवारणार्थ
यज्ञ, हवन, पूजा, पाठ, नामसंकीर्तन, अन्नदान
आदि धर्मकार्य ता०—१-२-६२से ५-२-६२
तक श्रीतीर्थ रामटेकड़ी पर शिष्य सेवकों द्वारा
सोत्साह श्रद्धा-भक्ति पूर्वक मनाया गया।

प्रतिदिन अहोरात्र हवन, पाठ, भजन,
कीर्तन, सायंकाल श्रीतीर्थ रामटेकड़ीकी परिक्रमा
तथा अन्तमें सद्गुरु बाबा शारदारामजीका
अमृतमय भवभय हारी प्रवचन होता रहा।

इम शुभ कार्यमें नगरके प्रसिद्ध कलाकार एवं
आचार्य लोगोंने पूर्ण सहयोग दिया।

आचार्य पंडित रामरतन जी पं०
श्रीमाली तथा उनके सहायक विप्रगण एवं
सन्तोंने यज्ञ-हवनका अनुष्ठान पूर्ण किया। इस
अवसर पर श्रीमद्भागवतगीता, श्री गुरुग्रन्थ
साहब, रामचरित मानस, शारदारामीय भागवत
किरण, श्री निगुण महारामायण, मुक्ति सोपान
आदि ग्रन्थोंका पाठ किया गया। श्री महादेव
दासजी, श्री रघुवंशदास जी, श्री नानकशरण

जी, श्री अर्जुन मुनिजी, श्रीधरदासजी, श्री साधु मुनिजी, श्री पं० तपसीजी आदि सज्जनोंने पाठ परायण सम्पन्न किये।

पाँच दिन तक नियमित यज्ञ, हवन, पाठ भजन, कीर्तन, कथा, प्रवचन, कृष्णलीला, नापञ्च आदि कार्यक्रम अविकल सामान्य रूपसे होते रहे। भजन कीर्तनके कार्यक्रममें कला एवं संगीत संसारके कतिपय सुप्रसिद्ध कलाकार बन्धुओंने सम्मिलित होकर समारोहकी श्री वृद्धि कर सफलीभूत किया। सम्मान्य अम्यागतों के नाम उल्लेखनाय है—दिनांक १ फरवरीको गायनाचार्य मास्टर खलीकर बुवा तथा श्री बी० सायन्ना दिनांक—२ फरवरीको गानकोकिला सी० विमलबाई कर्नाटकी दिनांक—३ फरवरीको महाप्रभु विरहप्रेमी भगवद्भक्त गायनाचार्य श्री दिलीप कुमार जी एवं श्रीमती भक्त इन्द्रादेवी (मीरा) तथा उनके सहयोगी। दिनांक—४ फरवरीको कुमार भूमानन्द वोगमका गायन, गायनाचार्य नारायण राववोगम दिनांक ५को बी० सायन्ना और उनके सहयोगी।

नगरके अन्यान्य श्रीमान धीमान एवं आफिसर लोग भी इस अवसर पर उपस्थित थे। भूत भविष्यके जानन हारे सद्गुरु बाबाजीके ज्ञानपूर्ण प्रवचन भयभीत जनताके लिए अमोघ महौषधि सिद्ध हुए। महाराजजीने सबको अभय करते हुए दुःख-सुख किसी भी हालतमें धर्मको न छोड़ने का आदेश दिया। पूजा-पाठ जप-तप और नाम संकीर्तन सत्य दया अहिंसा ये धर्मके साधन

और मनको संस्कारित कर आत्म सुखके दाता हैं।

प्रति दिन सेवकोंने सार्वजनिक भंडारे के आयोजन द्वारा दगिंद्रनारायणका पूजन किया। श्री ब्रह्मदास कोठागीजी ने ४ फरवरी को ब्रह्म-भोज और दक्षिणा प्रदान किया। दिनांक ५ फरवरी को पूर्णाहुतिके अवसर पर एक विशाल भण्डारेका आयोजन किया गया था। जिन सेवकोंने अपना तन मन धन लगाकर इस आयोजन को सफल बनाया उनके नाम— सर्वश्री अजित मेहता, तीरथसिंहजी मैनेजर पी० के० गुप्ताजी, हजारीलाल, मूलचन्द्र, नारायण राव, गोविन्द रामजी, हंसराजजी, सरदार शाह सलुजे, सरदार भोलासिंह, हीरानन्द जी, भीमनदासजी, सेठ रामगोपालजी, सेठ फतेह-चन्द्रजी, सीताराम कलंत्री, लक्ष्मीनारायण मूंदड़ा, सेठ फत्तूचन्द्र, श्रीमती अनुसूपा देवी, रुक्मिणीदेवी, विद्यादेवी, लीलादेवी, फखेवाली माई आदि प्रमुख हैं। कार्यक्रमका विस्तृत वर्णन और सभी शिष्य सेवकोंका आभार प्रदर्शन हम यहाँ स्थानाभावके कारण नहीं कर पा रहे। उसके लिये क्षमा प्रार्थी हैं।

सद्गुरु बाबा शारदारामजी

उदासीनपुरी, आजमगढ़ में ?

सद्गुरु बाबा शारदाराम उदासीन मुनिजी महाराज प्रतिवर्षकी माँति उत्तर भारतकी यात्रा पर प्रस्थान करने वाले हैं। ज्ञात हुआ है कि बाबाजी ६ अप्रैलको अपनी तपोभूमि पूनासे प्रस्थान कर ८ अप्रैल १९६२ तक उदासीनपुरी कप्तानगंज, आजमगढ़ पहुँच रहे हैं।

सम्पादकीय—

उदामीनाचार्य जगद्गुरु भगवान् श्रीचन्द्र देवजी महाराजके पवित्र चरण कमलोंमें हम "परमानन्द सन्देश" का अभिनन्दनाङ्क रूपी यह भावसुमन श्रद्धासहित सादर समर्पित कर परमानन्दका अनुभव कर रहे हैं। साधनाभाव के कारण जैसा होना चाहिये वैसा यह अङ्क नहीं बन पड़ा है। इतने अल्प समयमें जो कुछ भी पत्र-पुष्पके रूपमें सेवा बन पड़ी है यह सद्गुरु-देव बाबा शारदारामजीकी कृपा, शक्ति और प्रेरणाका ही प्रसाद है। आदरणीय महन्त श्री गोपालदासजी मुंगेर, योगीन्द्रानन्दजी मीमांसा-चार्य, न्यायतीर्थ, वाराणसी, श्रीडा० हरिहरदास जी उदामीन, साधुवेला आश्रम, वाराणसी आदि सज्जनोंके हम आभारी हैं। जिन्होंने अपना अमूल्य सहयोग और स्नेह प्रदान कर इस अङ्क को सफल बनाया है। इसमें जो कुछ त्रुटियाँ रह गई हों वे सब मेरी अल्पज्ञता और भूलके कारण ही हो सकी हैं, इसके लिये हम सभी सन्त, महन्त गुरुजनों एवं पाठकोंसे क्षमा प्रार्थी हैं।

अपील

"परमानन्द सन्देश" अभी शिशुरूप अपने द्वितीय वर्षमें घुटनोंके बल धीरे-धीरे चल रहा है। गुरु परमात्माकी जैसी सेवा होनी चाहिये वैसी सेवा नहीं बन पा रही है। इसके लिये परमानन्द सन्देशको सबल और स्वावलम्बी बनाना आवश्यक है। प्रतिवर्ष हजारों रुपयेकी क्षति उठानी पड़ती है। आयका भी कोई साधन नहीं है। पत्रकी पवित्रताकी रक्षाके विचारसे हम बाहरी विज्ञापन भी नहीं स्वीकार करते हैं। अतः स्वावलम्बी होनेके लिये ग्राहकोंकी संख्या बढ़ाना और आप कृपालु पाठकोंका सहयोग आपेक्षित है।

हम अपने कृपालु ग्राहकोंसे सादर अपील करते हैं, आप सभी परमानन्द सन्देशके दस दस नये ग्राहक बनाकर पत्रको सबल और स्वावलम्बी बनानेकी कृपा करें। ताकि इसके द्वारा परब्रह्म परमात्माकी अधिकसे अधिक सेवाकी जा सके।

परमानन्द सन्देश का कुम्भ अङ्क

१ मईको प्रकाशित होनेवाला हमारा ७वाँ अंक कुम्भ अंक होगा।

इसके लिए निम्नलिखित प्रकाशनार्थ सामग्री आमन्त्रित है।

१—कुम्भ का माहात्म्य इतिहास और तत्सम्बन्धी लेख आदि।

२—कुम्भ पर आये हुए सन्त, महन्त एवं ऋषि मुनियों का चित्र-परिचय।

३—हरिद्वार कुम्भ पर सम्पन्न विभिन्न सम्मेलन, सभा, समारोह, शोभा यात्रा, स्नान, आदि सभी शुभ कार्योंके चित्र सहित विवरण।

४—धर्म एवं आत्म ज्ञानके प्रचारमें संलग्न विभिन्न संस्थाओंका चित्र-परिचय।

विश्वके सभी धर्म सम्प्रदाय एवं मतानुयायियोंके कल्याणकारी लेख, चित्र-परिचय आदि स्वीकार किए जायेंगे। प्रकाशनार्थ सामग्री १५ अप्रैल तक कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिए।

भद्रसेन वैद्य द्वारा कल्पना प्रेस वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित।

परमानन्द संदेश

वर्ष २ अंक ५

फाल्गुन २०१८

मार्च १९६२

रजि० सं०

ए० १५५७

सन्त शिरोमणि

श्री श्री १०८ सद्गुरु बाबा शारदाराम जी उदासीन मुनि जी महाराज
एक आकर्षक मुद्रा में



जिनकी असीम कृपा के लवलेश मात्र से
यह ज्ञान यज्ञ सम्पन्न हो रहा है